वर्ष : 11 अंक :02 फरवरी / मार्च 2026 पृष्ठ : 48 मूल्य : 50 रुपये
MM
MEDIA MAP
www.mediamap.co.in
@mediamapnews
मीडिया मैप
उदार जनतंत्र सजग प्रहरी
BUDGET
2026
AI CONFERENCE
2026
होली खेलैं रघुवीरा...
www.mediamap.co.in
Follow us :

: हम क्यों :

मीडिया मैप एक वैचारिक पत्रिका है। हमारे समाज के नीतिपरक और मूल्यनिष्ठ बिन्दु तथा इनसे जुड़ाव रखने वाले आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक मुद्दे इसकी विषयवस्तु है। मीडिया मैप की संपादकीय नीति उदारवादी, आधुनिक, प्रगतिशील व सर्व धर्म समभाव की भावना पर आधारित है।

मीडिया मैप हमारे बहुलतावादी समाज की विविधताओं से सृजित समस्त सोच, विचार, दृष्टिकोण, मूल्य और मान्यताओं को अपने में समाहित करने का एक प्रयास है। हमारा उद्देश्य वैज्ञानिक सोच द्वारा समाज से जुड़े मूल मुद्दों पर एक प्रबुद्ध जनमत विकसित करना है, जिससे देश में संकुचित मानसिकता और आपसी टकराव से ऊपर उठकर एक उच्चस्तरीय विचार-विमर्श का वातावरण तैयार हो सके।

“मीडियामैप परिवार अपने सभी पाठकों को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ देता है और आशा करता है कि यह वर्ष विवेकपूर्ण सोच, जिम्मेदार पत्रकारिता और सामाजिक समरसता की दिशा में ठोस एवं सकारात्मक बदलावों का साक्षी बने।“

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सहज प्रहरी

संपादकीय सलाहकार मंडल

डॉ. बलदेवराज गुप्त

के. बी. माथुर

डॉ. सलीम खान

प्रधान संपादक

प्रदीप माथुर

संयुक्त संपादक : डॉ सतीश मिश्र

तकनीकी संपादक : राजीव जी

राजनैतिक संपादक : डॉ एम् एच ग़ज़ाली

प्रबंध संपादक : चन्द्र कुमार

प्रबंधक : जगदीश गौतम

वरिष्ठ उप संपादक : प्रशान्त कुमार

कनिष्ठ उप संपादक : अंकुर कुमार

विधि परामर्शदाता-संजय माथुर

पंजीकृत एवं संपादकीय कार्यालय 69 - ज्ञानखंड - 4, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद 201014 उत्तर प्रदेश

दूरभाष – 0120 - 3248535

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, एवं संपादक प्रदीप माथुर द्वारा- वर्ल्ड विंडो डिजिटल प्रेस, नवयुग मार्केट, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश 201001 से मुद्रित एवं मीडिया मैप प्रकाशन-69-ज्ञानखंड-4, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद 201014 उत्तर प्रदेश से प्रकाशित।

जन संपर्क अधिकारी मो. 9810533682

इस पत्रिका से जुड़े सभी पदाधिकारी, लेखकगण व अन्य सहयोगीगण समाज हित में बगैर किसी पारिश्रमिक या वेतन के स्वैच्छिक सेवा प्रदाता हैं।

इस अंक में प्रकाशित समस्त फीचर व समाचार के लेखकों के अपने स्वतंत्र विचार हैं, जिससे स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में क्षेत्रधिकार जिला एवं सत्र न्यायालय गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश होगा।

RNI No. : UPHIN/2016/68336

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

3-6 समाचार सरिता

अमेररका के साथ व्यापार समझौता भारत के डलए कोई.... 7-8

11 -12 हथियार कूटनीति: आर्थिक संकट के बीच पाकिस्तान की सैन्य

एपस्टीन फाइल्स :एक डायरी, कई चेहरे, और दुनिया की बेचैन.... 13-14

15-16 संसद के वर्तमान सत्र का हंगामा और हमारी गौरवशाली परम्परा

राजनीतिक प्रासंगिकता के लिए वामपंथ सांस्कृतिक जड़ों की 17-18

21 केरल विधानसभा चुनाव से पहले सीपीएम की कड़ी परीक्षा

दक्षिण एशिया में धार्मिक स्वतंत्रता पर लगते प्रश्नचिह्न 22-23

24-28 आवरण कथा

होली के रंगों से उठता है ,सौहार्द का सूरज 29-30

31-32 क्या महिलाओं के अधिकार और समाज में उनका स्थान.........

शहीदों का भारत: क्या हम उनके सपनों के काबिल हैं? 33

34-35 यूजीसी निर्देश और उच्च शिक्षा का विवाद: तथ्य, आशंकाएँ....

भारत और कनाडा के बीच बड़े व्यापारिक समझौते की पहल 36

37-38 हमारी पहल: सत्य की कसौटी

सोमनाथ मंदिर का सत्य और मिथ्या भ्रम 39

इकलौता बच्चा कितना अकेला 40-41

42-44 विश्व परिदृश्य

Email : editor@mediamap.co.in

संपादकीय

नया वर्ष : आशा और निराशा

प्रो प्रदीप माथुर

हममें से जिन लोगों ने यह उम्मीद की थी कि नया वर्ष सद्भाव, शांति और मित्रता का संदेश लेकर आएगा और बीते वर्ष के टकराव, उथल-पुथल तथा चिंता को पीछे छोड़ देगा, वे आज स्वयं को ठगा हुआ महसूस कर रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य अत्यंत चिंताजनक है—पश्चिम एशिया में युद्ध की आशंकाएँ भयावह रूप ले रही हैं। राष्ट्रपति ट्रंप की महत्वाकांक्षाएँ और उनकी विचित्र टैरिफ नीतियाँ विश्व को अस्थिर कर रही हैं। और अपने देश में, हमारे निकट, हम सरकार और विपक्ष के बीच अभूतपूर्व टकराव का दुखद दृश्य देख रहे हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था को चलाने के लिए सरकार और विपक्ष दो पहियों की तरह हैं, किंतु संसद के भीतर और बाहर दोनों के बीच संघर्ष असामान्य स्तर तक पहुँच गया है।

वर्तमान बजट सत्र के दौरान जो घटनाएँ घटीं, वे हमारे छोटे किंतु गौरवशाली संसदीय इतिहास में अभूतपूर्व कही जा सकती हैं। पहली बार ऐसा हुआ कि विपक्ष के नेता को, जो वेस्टमिंस्टर परंपरा के अनुसार (जिसे हम अपना आदर्श मानते हैं) देश के 'छाया प्रधानमंत्री' की भूमिका निभाते हैं, बोलने की अनुमति नहीं दी गई।

और पहली बार ऐसा भी हुआ कि प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के अवसर पर लोकसभा को संबोधित नहीं किया, जबकि बजट सत्र की शुरुआत में यह परंपरा रही है।

स्वाभाविक है कि दोनों पक्ष इस अव्यवस्था के लिए एक-दूसरे को दोषी ठहरा रहे हैं। किंतु संसद की कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने की बड़ी जिम्मेदारी सत्तारूढ़ दल और अध्यक्ष की होती है। दुर्भाग्यवश, दोनों ही संसदीय प्रणाली में अपनी गरिमामय जिम्मेदारी को समझने में असफल रहे।

और भी अधिक चिंताजनक बात यह है कि सरकार ने वास्तविक मुद्दों से बचने के लिए जो हल्के-फुल्के और तुच्छ बहाने अपनाए हैं, वे गंभीर चिंता पैदा करते हैं। इससे यह आभास मिलता है कि सत्तारूढ़ दल कुछ छिपाना चाहता है और हमारी व्यवस्था में पारदर्शिता का अभाव है।

इस समय देश में त्योहारों और आत्मशुद्धि के अनुष्ठानों का मौसम है—शिवरात्रि, होली और रमज़ान जैसे पर्व हमारे सामने हैं। आइए आशा करें कि हम इनके संदेश और भावना को आत्मसात करें तथा अपने आचरण और कार्य-पथ को सुधारने की प्रेरणा लें।

यही समय की मांग है और ऐसे समाज के लिए यह अत्यंत आवश्यक भी है, जो आज उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा है। सभ्यताएँ तलवारों से नहीं पराजित, वे पहले विवेक खोती हैं। जब धर्म सत्ता का औज़ार बनता है और राजनीति धर्म की ठेकेदारी करने लगती है, तब लोकतंत्र धीरे-धीरे भीड़तंत्र में बदल जाता है। यह प्रक्रिया शोर से नहीं, तालियों और नारों के बीच पूरी होती है।

धर्म का मूल उद्देश्य आत्मशुद्धि है, सत्ता नहीं। लेकिन जब आस्था को मतपत्र का विकल्प बनाया जाता है, तब नागरिक अधिकार नहीं, पहचानें मायने रखने लगती हैं। सवाल पूछना अपराध बनता है, असहमति अधर्म और आलोचना राष्ट्रविरोध। यही वह क्षण है, जहाँ धर्म करुणा छोड़कर अनुशासन सिखाने लगता है और राजनीति उत्तरदायित्व छोड़कर भय का व्यापार करती है।

महात्मा गांधी ने चेताया था कि धर्म को राजनीति में घसीटना दोनों का अपमान है। आज राजनीति धर्म को घसीट नहीं रही—उसे हथियार बना चुकी है। गुरुदेव टैगोर ने जिस असहिष्णुता की भविष्यवाणी की थी, वह अब अपवाद नहीं, नीति बनती जा रही है। और डॉ. अम्बेडकर, जिनके संविधान ने नागरिक को आस्था से ऊपर रखा था, आज सबसे असुविधाजनक नाम बन चुके हैं।

धर्मनिरपेक्षता को धर्म-विरोध कहकर बदनाम किया जाता है, जबकि सच्चाई यह है कि वही धर्म और न्याय—दोनों की अंतिम सुरक्षा है। जब राज्य किसी एक आस्था का संरक्षक बनता है, तब कानून निष्पक्ष नहीं रह जाता, और नागरिक बराबर नहीं रहते।

इतिहास गवाही देता है—धर्म और सत्ता का गठजोड़ कभी भी समाज को पवित्र नहीं बनाता, केवल क्रूर बनाता है। यदि आज चेतावनी नहीं सुनी गई, तो कल हमें अपनी संसदीय व्यवस्था के पतन पर आश्चर्य करने का अधिकार भी नहीं बचेगा।

मदरसे, अल्पसंख्यक अधिकार और विधि का शासन
प्रशासनिक अतिरेक के बीच संवैधानिक राहत

16 जनवरी 2026 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय (लखनऊ पीठ) ने भारतीय गणराज्य के एक मूल संवैधानिक सिद्धांत को दोहराया—कि कार्यपालिका की शक्ति, चाहे कितनी ही आक्रामक क्यों न हो, संविधान के अधीन ही रहती है। उत्तर प्रदेश प्रशासन द्वारा श्रावस्ती में एक गैर-मान्यता प्राप्त मदरसे को सील किए जाने के आदेश को रद्द करते हुए न्यायालय ने स्पष्ट किया कि सरकारी मान्यता का अभाव किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था को अवैध नहीं बनाता और न ही यह राज्य को उसे बंद करने का अधिकार देता है। ऐसे संस्थानों को सरकारी अनुदान या आधिकारिक परीक्षाओं से वंचित किया जा सकता है, लेकिन केवल गैर-मान्यता के आधार पर उनका अस्तित्व समाप्त करना कानूनसम्मत नहीं है।

यह निर्णय संविधान के अनुच्छेद 30(1) में निहित अधिकारों और सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णयों पर दृढ़ता से आधारित है। ऐसे समय में, जब संवैधानिक मूल्यों का क्षरण सामान्य प्रशासनिक व्यवहार बनता जा रहा है, यह फैसला न्यायिक स्पष्टता का एक महत्वपूर्ण क्षण है। वर्ष 2014 के बाद, विशेषकर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड और असम जैसे राज्यों में, संक्षिप्त विध्वंस कार्रवाइयाँ, बिना मुकदमे लंबी हिरासत और प्रक्रिया के अधिकारों का क्षरण सामान्य होता गया है। मुस्लिम समुदाय के जीवन, संपत्ति और संस्थानों के विरुद्ध प्रशासनिक कार्रवाई अक्सर सामाजिक शत्रुता, भीड़ हिंसा और चयनात्मक कानून-प्रवर्तन के बीच होती रही है।

श्रावस्ती का मामला इसी प्रवृत्ति का प्रतीक था। 1 मई 2025 को जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी ने मदरसा अहले सुन्नत इमाम अहमद रज़ा को केवल इस आधार पर सील करने का आदेश दिया कि उसे उत्तर प्रदेश मदरसा शिक्षा बोर्ड से मान्यता प्राप्त नहीं थी। न तो किसी आपराधिक गतिविधि का आरोप था, न ही सार्वजनिक व्यवस्था या शैक्षणिक अनियमितता का। यह मदरसा न तो सरकारी सहायता चाहता था और न ही राज्य-मान्यता प्राप्त प्रमाणपत्रों का दावा करता था। उसका एकमात्र "दोष" गैर-मान्यता प्राप्त होना था।

न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी ने इस आदेश को निरस्त करते हुए कानून और संविधान के बीच एक स्पष्ट सीमा रेखा खींची। न्यायालय ने कहा कि उत्तर प्रदेश गैर-सरकारी अरबी और फ़ारसी मदरसा मान्यता नियमावली, 2016 का नियम 13 केवल गैर-मान्यता प्राप्त संस्थानों को अनुदान से वंचित करता है, न कि उन्हें बंद करने का अधिकार देता है। मान्यता और अस्तित्व के बीच अंतर को रेखांकित करते हुए न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मान्यता का अभाव किसी संस्था को अवैध नहीं बनाता। 24 घंटे के भीतर सील हटाने का आदेश यह दर्शाता है कि प्रशासनिक सुविधा मौलिक अधिकारों से ऊपर नहीं हो सकती।

न्यायालय ने राज्य के इस तर्क को भी खारिज किया कि गैर-मान्यता प्राप्त मदरसे छात्रों के लिए "जटिलताएँ" पैदा कर सकते हैं। अनुमान के आधार पर दमनात्मक कार्रवाई को उचित नहीं ठहराया जा सकता। यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के *अंजुम क़ादरी बनाम भारत संघ* (2024) के फैसले से भी पुष्ट होता है, जिसमें स्पष्ट किया गया था कि जो अल्पसंख्यक संस्थान न तो सहायता चाहते हैं और न ही मान्यता, उन्हें अनुच्छेद 30(1) के तहत पूर्ण संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है।

ऐसे समय में, जब मुसलमानों को राज्य अधिक दंडात्मक और कम संरक्षक प्रतीत होता है, यह फैसला एक शीतल संवैधानिक झोंके जैसा है। यह भेदभावपूर्ण ढांचे को पूरी तरह नहीं तोड़ता, लेकिन यह मूल सत्य को पुनः स्थापित करता है—कि भारत संविधान से शासित है, न कि कार्यपालिका के मनमाने आदेशों से, और यह कि नियमन को दमन में नहीं बदला जा सकता।

संवैधानिक नैतिकता और धर्मनिरपेक्षता की रक्षा का आह्वान

संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' और 'समाजवादी' शब्दों के जोड़े जाने की वर्षगांठ के अवसर पर नई दिल्ली के संविधान क्लब में "रीबिल्डिंग द रिपब्लिक: रिस्टोरिंग कॉन्स्टीट्यूशनल मोरैलिटी इन इंडिया" विषय पर एक सार्वजनिक संवाद आयोजित किया गया। इसमें पत्रकारों, वकीलों, राजनीतिक विश्लेषकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भाग लेकर भारत में संवैधानिक मूल्यों, विशेषकर धर्मनिरपेक्षता और संवैधानिक नैतिकता के क्षरण पर गंभीर चिंता व्यक्त की।

वक्ताओं ने चेताया कि संविधान को कमजोर करने की प्रक्रिया प्रायः धीरे-धीरे कानूनों और संस्थागत बदलावों के माध्यम से होती है, न कि किसी एक खुली घोषणा से। वरिष्ठ अधिवक्ता अवनी बंसल ने कहा कि तानाशाही प्रवृत्तियाँ पहले संविधान की आत्मा को कमजोर करती हैं, इसलिए नागरिकों को सतर्क और जागरूक रहना चाहिए। वरिष्ठ पत्रकार कुर्बान अली ने भारत की बहुलतावादी परंपरा को रेखांकित करते हुए स्कूलों में प्रस्तावना पढ़ाए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया, ताकि नई पीढ़ी संवैधानिक मूल्यों को आत्मसात कर सके और जिम्मेदार नागरिक बन सके।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे शहनवाज़ आलम ने संवैधानिक जागरूकता को बढ़ावा देने में सरकार की उदासीनता की आलोचना की और इंदिरा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू के उदाहरणों से धर्मनिरपेक्षता की रक्षा की ऐतिहासिक परंपरा को याद दिलाया। उन्होंने कहा कि सामाजिक ध्रुवीकरण के डर से लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की पैरवी बंद नहीं होनी चाहिए।

अन्य वक्ताओं ने संविधान की समानता और समावेशिता की भावना पर बल देते हुए प्रस्तावना से 'धर्मनिरपेक्ष' और 'समाजवादी' शब्द हटाने के प्रयासों पर चिंता जताई। विपक्ष की भूमिका और राजनीतिक जवाबदेही पर भी सवाल उठाए गए। कार्यक्रम का समापन संविधान की प्रस्तावना के सामूहिक पाठ के साथ हुआ, जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के प्रति प्रतिबद्धता दोहराई गई।

शाकाहार, अहिंसा और सांस्कृतिक वर्चस्व

लेख में लेखक भारत के कुछ जैन और कट्टर हिंदू समूहों द्वारा सार्वजनिक स्थानों पर मांसाहार पर लगाए जा रहे प्रतिबंधों की कड़ी आलोचना करता है। वह बताता है कि पहले वह जर्मनी में एक जैन बच्ची के मामले में शाकाहार के सम्मान के पक्ष में खड़ा था, क्योंकि उसका समर्थन सांस्कृतिक विविधता और व्यक्तिगत आस्था के सम्मान की भावना से प्रेरित था। लेकिन भारत में जो कुछ वह देख रहा है, उससे उसे यह एहसास हुआ है कि कई कट्टर शाकाहारी समुदाय स्वयं को नैतिक और सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठ मानने लगे हैं और इसी भावना के आधार पर दूसरों को अपमानित करने, कलंकित करने और यहाँ तक कि भीड़-हिंसा जैसी घटनाओं को भी 正 ठहराने लगे हैं।

लेखक के अनुसार, यह प्रवृत्ति अहिंसा और मानवतावाद की मूल भावना के बिल्कुल विपरीत है, जो शाकाहार की दार्शनिक बुनियाद मानी जाती है। वह इसे धार्मिक भाषा का उपयोग करके राजनीतिक और सामाजिक वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास बताता है। उसका तर्क है कि केवल मांस न खाना जीवन के प्रति अधिक सम्मान का प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि आधुनिक जीवनशैली स्वयं प्रकृति और जीव-जंतुओं के शोषण पर टिकी है। वाहन चलाना, मकान बनाना, कंप्यूटर का उपयोग, डेयरी उत्पादों का सेवन और औद्योगिक उत्पादन—इन सबमें अनगिनत जीवों का विनाश और पीड़ा शामिल है। विशेष रूप से दुग्ध उद्योग में गायों को जीवनभर शारीरिक कष्ट और बीमारियों का सामना करना पड़ता है।

लेख यह भी कहता है कि यदि शाकाहारी लोग यह मानते हैं कि उनकी जीवनशैली नैतिक रूप से श्रेष्ठ है और इसी आधार पर दूसरों पर अपनी मान्यताएँ थोपते हैं, तो यह एक प्रकार का आधुनिक जातिवाद है। लेखक का निष्कर्ष है कि अयोध्या जैसे स्थानों पर यदि किसी को मांसाहार से आपत्ति है तो वह विनम्र अनुरोध के माध्यम से अपनी भावना व्यक्त करे, न कि धमकी, दबाव या नैतिक श्रेष्ठता के दावे के साथ। विविधता और सह-अस्तित्व ही एक सभ्य और लोकतांत्रिक समाज की असली पहचान है।

ग्राहम स्टेन्स श्रद्धांजलि: धर्मों के बीच सौहार्द की प्रतिज्ञा

ओडिशा के केओंझार ज़िले के मनोहरपुर गाँव में ऑस्ट्रेलियाई मिशनरी ग्राहम स्टेन्स और उनके दो छोटे बेटों फिलिप (10) व टिमोथी (6) की 27वीं पुण्यतिथि पर भावपूर्ण श्रद्धांजलि सभा आयोजित की गई। 22 जनवरी 1999 की उस भयावह रात को, जब एक उग्र भीड़ ने उनकी जीप में जिंदा जला दिया था, आज भी धार्मिक असहिष्णुता के सबसे क्रूर उदाहरणों में गिनी जाती है। इस अवसर पर प्रार्थना सभाओं और मोमबत्तियों के बीच वक्ताओं ने आपसी सौहार्द, करुणा और संवैधानिक मूल्यों के प्रति नवीकृत प्रतिबद्धता का आह्वान किया।

करीब 200 लोगों की उपस्थिति में आयोजित इस कार्यक्रम में आदिवासी नेताओं और स्थानीय ईसाई समुदाय के सदस्यों ने स्टेन्स के सेवा-कार्य को याद किया, जिन्होंने ओडिशा के आदिवासी क्षेत्रों में कुष्ठ रोगियों की निस्वार्थ सेवा को अपना जीवन समर्पित किया था। ग्राम बुज़ुर्ग योहान मुर्मू ने कहा कि स्टेन्स का जीवन मानवता और प्रेम का संदेश था, और उनकी हत्या आज भी अंतरात्मा को झकझोरती है।

लेख में 1999 की उस घटना का विवरण दिया गया है, जब बजरंग दल से जुड़े दारा सिंह के नेतृत्व में भीड़ ने कथित धर्मांतरण के आरोपों के आधार पर यह जघन्य अपराध किया। बाद में न्यायिक प्रक्रिया में दारा सिंह को आजीवन कारावास की सज़ा मिली, हालांकि अदालत की कुछ टिप्पणियों ने धार्मिक स्वतंत्रता पर बहस को जन्म दिया।

स्टेन्स की पत्नी ग्लैडिस स्टेन्स द्वारा अपराधियों को क्षमा करना आज भी अंतरधार्मिक संवाद का प्रेरक उदाहरण माना जाता है। उनकी क्षमा और सेवा की विरासत आज भी मयूरभंज के कुष्ठ रोग अस्पताल और मनोहरपुर के विकास कार्यों में जीवित है। यह स्मरण केवल अतीत का शोक नहीं, बल्कि आज के भारत में धार्मिक सहिष्णुता और भाईचारे को मज़बूत करने का एक नैतिक आह्वान भी है।

एआई शो में अव्यवस्था ने उठाए सवाल, नवाचार के मंच पर प्रबंधन की कमी उजागर

भारत तेजी से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। इसी क्रम में आयोजित एक बड़े एआई शो से देश के नवाचार और तकनीकी क्षमता को प्रदर्शित करने की उम्मीद थी। देशभर से आए स्टार्टअप फाउंडर्स और इनोवेटर्स अपने उत्पादों और विचारों को दुनिया के सामने रखने के लिए उत्साहित थे। लेकिन इस आयोजन के दौरान सामने आई अव्यवस्थाओं ने कई गंभीर सवाल खड़े कर दिए।

बताया गया कि कार्यक्रम के दौरान अचानक सुरक्षा कारणों से कई काउंटर खाली कराने के निर्देश दिए गए। कुछ फाउंडर्स, जो अपने उत्पाद प्रदर्शन के लिए काउंटर पर सामान रखकर गए थे, लौटने पर पाया कि उनका सामान गायब था। यह घटना न केवल उनकी मेहनत के लिए झटका थी, बल्कि आयोजन की सुरक्षा व्यवस्था पर भी सवाल खड़े करती है। एक फाउंडर ने निराशा व्यक्त करते हुए कहा कि वे बड़े सपनों और उम्मीदों के साथ यहां आए थे, लेकिन उन्हें निराशा और अव्यवस्था का सामना करना पड़ा।

कार्यक्रम स्थल पर प्रवेश व्यवस्था भी अत्यंत अव्यवस्थित रही। लंबी-लंबी कतारों में लोगों को घंटों इंतजार करना पड़ा। कई लोगों को बिना किसी स्पष्ट कारण के बाहर रोक दिया गया। खाने-पीने की व्यवस्था भी सवालों के घेरे में रही। फूड काउंटर पर केवल नकद भुगतान स्वीकार किया जा रहा था, जबकि डिजिटल भुगतान के इस युग में यह स्थिति हैरान करने वाली थी। इतना ही नहीं, इंटरनेट और मोबाइल कनेक्टिविटी की भी गंभीर समस्या रही, जिससे डिजिटल आधारित कार्यक्रम की मूल भावना ही प्रभावित हुई।

प्रोहिबिटेड आइटम्स की सूची में बैग, लैपटॉप और अन्य जरूरी सामान को लेकर अस्पष्टता थी, जिससे प्रतिभागियों को असुविधा का सामना करना पड़ा। कई लोगों ने यह भी सवाल उठाया कि जब यह एक तकनीकी और डिजिटल कार्यक्रम है, तो बुनियादी सुविधाओं और व्यवस्थाओं का अभाव क्यों था।

हालांकि, इन सभी समस्याओं के बावजूद फाउंडर्स और इनोवेटर्स का उत्साह कम नहीं हुआ। उनका मानना है कि भारत में प्रतिभा और क्षमता की कोई कमी नहीं है। जरूरत केवल बेहतर प्रबंधन और सुव्यवस्थित आयोजन की है। यदि भविष्य में ऐसे आयोजनों में व्यवस्थाओं को मजबूत किया जाए, तो भारत निश्चित रूप से एआई के क्षेत्र में वैश्विक नेतृत्व की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

अंदाज़-ए-लखनऊ

लखनऊ में जब पहली बार म्युनिसिपैलिटी के चुनाव हुए, तो चौक से अपने ज़माने की मशहूर तवायफ़, महफ़िलों की रौनक और नज़ाकत की मिसाल — दिलरुबा जान — उम्मीदवार बनीं। उनके रुतबे और लोकप्रियता का ऐसा असर था कि कोई भी उनके मुक़ाबिल खड़ा होने को तैयार न हुआ।

उन्हीं दिनों चौक में एक नाम बड़े अदब से लिया जाता था — हकीम शम्शुद्दीन साहेब। दवाख़ाना भी था, शोहरत भी, और मरीज़ों की भीड़ भी। दोस्तों ने ज़ोर-ज़बरदस्ती उन्हें दिलरुबा जान के मुक़ाबिल मैदान-ए-इंतिख़ाब में उतार दिया।

दिलरुबा जान का प्रचार शबाब पर था। चौक में हर शाम महफ़िलें सजतीं, मशहूर नर्तकियाँ बुलायी जातीं, और हुजूम उमड़ पड़ता। उधर हकीम साहेब के साथ बस वही गिने-चुने दोस्त थे, जिन्होंने उन्हें इस आज़माइश में धकेला था।

हकीम साहेब खिन्न होकर बोले, "तुम लोगों ने तो मुझे पिटवा ही दिया, हार अब मुक़द्दर है।"

दोस्तों ने हिम्मत न हारी और एक नारा गढ़ा —

"है हिदायत चौक के हर वोटर-ए-शौक़ीन को, दिल दीजिए दिलरुबा को, वोट शम्शुद्दीन को!"

जवाब में दिलरुबा जान ने अपनी नज़ाकत से तराशा हुआ नारा दिया —

"है हिदायत चौक के हर वोटर-ए-शौक़ीन को, वोट दीजिए दिलरुबा को, नब्ज़ शम्शुद्दीन को!"

नतीजा वही हुआ जो लखनवी ज़ेहनियत से मेल खाता था। हकीम साहेब का नारा दिलों में उतर गया और वो चुनाव जीत गए।

लखनऊ की तहज़ीब देखिए कि दिलरुबा जान ख़ुद हकीम साहेब के घर तशरीफ़ लाईं, मुबारकबाद पेश की और मुस्कुराकर बोलीं—

"मैं इंतिख़ाब हार गई और आप जीते, मुझे इसका कोई मलाल नहीं। मगर आपकी जीत ने एक हक़ीक़त साबित कर दी है

'लखनऊ में मर्द कम हैं, मरीज़ ज़्यादा

अमेरिका के साथ व्यापार समझौता भारत के लिए कोई अमिश्रित वरदान नहीं

प्रो शिवाजी सरकार

अमेरिकी टैरिफ में हालिया कटौती भारतीय व्यापार और बाजारों के लिए निश्चित रूप से सकारात्मक संकेत है, लेकिन इसे किसी चमत्कारी या अप्रत्याशित लाभ के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह कदम व्यापारिक घर्षण की एक परत को कम करता है और कुछ भारतीय निर्यात क्षेत्रों को मूल्य प्रतिस्पर्धात्मकता में राहत देता है। फिर भी, इस समझौते के साथ कई रियायतें, भू-राजनीतिक लागतें और दीर्घकालिक रणनीतिक प्रभाव जुड़े हुए हैं। अंततः इसका वास्तविक लाभ इस बात पर निर्भर करेगा कि कार्यान्वयन कैसे होता है, भारत अपने निर्यात बाजारों में कितनी विविधता लाता है, और घरेलू सुधार अमेरिकी बाजार द्वारा खुले अवसरों के साथ कितना तालमेल बिठाते हैं।

अमेरिकी कृषि मंत्री ब्रुक रॉलिंस ने भारत द्वारा अमेरिकी कृषि उत्पादों के आयात के लिए बाजार खोलने के फैसले का स्वागत किया है। उनका कहना है कि नया अमेरिका-भारत सौदा अमेरिकी किसानों के लिए बड़े अवसर पैदा करेगा, कीमतों को सहारा देगा और ग्रामीण अमेरिका की अर्थव्यवस्था में नकदी का प्रवाह बढ़ाएगा। अमेरिका का भारत के साथ लगभग 1.3 अरब डॉलर का कृषि व्यापार घाटा है, और भारत की विशाल तथा बढ़ती आबादी अमेरिकी कृषि उत्पादों के लिए महत्वपूर्ण बाजार मानी जा रही है।

हालांकि, बड़ा प्रश्न यह है कि इस समझौते से भारतीय किसानों को कितना लाभ या नुकसान होगा। कृषि क्षेत्र पहले से ही मूल्य अस्थिरता, आय दबाव और आयात प्रतिस्पर्धा जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है। यदि अमेरिकी कृषि उत्पाद बड़े पैमाने पर भारतीय बाजार में प्रवेश करते हैं, तो घरेलू उत्पादकों पर प्रतिस्पर्धात्मक दबाव बढ़ सकता है। इसलिए लाभ और जोखिम दोनों को संतुलित दृष्टि से देखना आवश्यक है।

संक्षेप में कहा जाए तो भारत को मनोवैज्ञानिक और क्षेत्रीय निर्यात प्रतिस्पर्धात्मकता का लाभ मिलता है, जबकि अमेरिका को व्यापक बाजार पहुंच और रणनीतिक बढ़त हासिल होती दिखाई देती है। यह सौदा फायदेमंद है, लेकिन स्पष्ट रूप से एकतरफा जीत नहीं है।

2024 में अमेरिका ने भारतीय वस्तुओं पर लगभग 2.4 प्रतिशत का ट्रेड-वेटेड औसत टैरिफ लगाया था। हालांकि औसत दर अपेक्षाकृत कम थी, लेकिन विशिष्ट उत्पादों पर अलग-अलग और कई बार ऊंची दरें लागू थीं। बाद में लगाए गए दंडात्मक 50 प्रतिशत (25+25) शुल्क ने भारतीय निर्यातकों को गंभीर झटका दिया। अब नए समझौते के तहत इन शुल्कों को घटाकर 18 प्रतिशत कर दिया गया है। यह 50 प्रतिशत की तुलना में राहत है, लेकिन 2024 की औसत दरों से कहीं अधिक है। प्रभावी रूप से भारतीय निर्यातकों को अब भी लगभग 15-16 प्रतिशत अतिरिक्त शुल्क का सामना करना पड़ेगा। इसका अर्थ है कि भारतीय उत्पाद पहले की तुलना में महंगे बने रहेंगे और प्रतिस्पर्धी बने रहने के लिए निर्यातकों को लागत दक्षता बढ़ानी होगी।

महीनों तक चले व्यापार तनाव और टैरिफ खतरों ने निर्यात और बाजार भावनाओं को ठंडा कर दिया था। नए समझौते के बाद भारतीय शेयर बाजार में तेजी आई और रुपये को भी मजबूती मिली। यह दर्शाता है कि निवेशक इस समझौते को स्थिरता की दिशा में कदम मान रहे हैं।

> अमेरिका द्वारा टैरिफ में कटौती ने भारतीय बाजारों और निर्यातकों को तात्कालिक राहत दी है, लेकिन क्या यह वास्तव में बड़ी जीत है? इस गहन विश्लेषण में जानिए कैसे यह समझौता एक ओर भारत को प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त देता है, तो दूसरी ओर कृषि, ऊर्जा और व्यापार नीति में नई चुनौतियाँ भी खड़ी करता है। आखिर इस सौदे में रणनीतिक लाभ किसके पक्ष में अधिक झुकता है—भारत या अमेरिका?

विशेष रूप से कपड़ा, रत्न एवं आभूषण और इंजीनियरिंग वस्तुओं जैसे श्रम-प्रधान क्षेत्रों को राहत मिल सकती है, जो 50 प्रतिशत शुल्क से बुरी तरह प्रभावित हुए थे। फिर भी सवाल यह है कि क्या 18 प्रतिशत की नई दर भारतीय उत्पादों को वियतनाम, बांग्लादेश और इंडोनेशिया जैसे प्रतिस्पर्धियों के मुकाबले पर्याप्त बढ़त दे पाएगी, जहां कई मामलों में

अमेरिकी टैरिफ और कम हैं।

इस समझौते के तहत भारत ने अमेरिकी आयात पर बाधाएं कम करने और अमेरिकी ऊर्जा, प्रौद्योगिकी, कृषि तथा अन्य उत्पादों की बड़ी मात्रा में खरीद का वचन दिया है। इससे दीर्घकाल में अमेरिका के साथ भारत का व्यापार घाटा बढ़ सकता है और टैरिफ नीति में भारत की लचीलापन क्षमता सीमित हो सकती है। भारत का कुल आयात लगभग 700 अरब डॉलर है और उसके पास पहले से ही यूके, यूरोपीय संघ सहित कई देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौते (FTA) हैं। यूरोपीय संघ के साथ संभावित समझौते को 'सोने की खान' कहा गया है। ऐसे में अमेरिका से बड़े पैमाने पर आयात बढ़ाना संतुलन साधने की चुनौती पेश करेगा।

टैरिफ 50% से घटकर 18%—बाजारों में उत्साह, रुपये में मजबूती और निर्यातकों को राहत। लेकिन इसके पीछे छिपी हैं भू-राजनीतिक शर्तें, ऊर्जा आयात की नई गणित और कृषि क्षेत्र की चिंताएँ। क्या यह समझौता भारत के लिए अवसर है या संतुलन की कठिन परीक्षा? इस लेख में पढ़िए अमेरिका-भारत व्यापार समझौते का पूरा रणनीतिक विश्लेषण।

ऊर्जा आयात का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। भारत द्वारा रूसी तेल खरीद को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने की प्रतिबद्धता एक बड़ा भू-राजनीतिक बदलाव है। रूसी तेल अपेक्षाकृत सस्ता विकल्प था। यदि भारत को अधिक महंगे स्रोतों से आयात करना पड़ता है, तो आयात बिल और चालू खाते पर दबाव बढ़ सकता है। यह रणनीतिक संरेखण का निर्णय है, जिसके आर्थिक निहितार्थों का सावधानीपूर्वक प्रबंधन आवश्यक होगा।

कुछ उत्पादों—जैसे स्टील, एल्युमीनियम और ऑटो कंपोनेंट—पर धारा 232 जैसे अमेरिकी व्यापार नियम लागू रह सकते हैं, जिससे इन क्षेत्रों को सीमित राहत मिलेगी। इसके अलावा, टैरिफ में कटौती मुख्यतः वस्तुओं के निर्यात पर लागू होती है, जबकि भारत के अमेरिका को कुल निर्यात में सेवाओं—विशेषकर आईटी—का बड़ा हिस्सा है, जो टैरिफ संरचना से बाहर रहती हैं। इसलिए जीडीपी पर तत्काल प्रभाव सीमित रहने की संभावना है। विश्लेषकों के अनुसार, इससे जीडीपी में लगभग 0.3 प्रतिशत तक की वृद्धि संभव है, जो भारत की विशाल अर्थव्यवस्था के संदर्भ में मामूली है।

इस पूरे घटनाक्रम का बाजार पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी देखा गया। जब जनवरी में अमेरिकी एसईसी ने गौतम अदानी और सागर अदानी को समन जारी करने की अनुमति मांगी, तो अदानी समूह की कंपनियों के शेयरों में 3.54 प्रतिशत से 14.54 प्रतिशत तक गिरावट आई। लेकिन ट्रंप-कालीन व्यापार समझौते की घोषणा के बाद 3 फरवरी को बाजार खुलते ही बीएसई और एनएसई में समूह की कंपनियों के शेयरों में उल्लेखनीय तेजी दर्ज की गई। अदानी एनर्जी सॉल्यूशंस, अदानी एंटरप्राइजेज, अदानी ग्रीन एनर्जी, अदानी पोर्ट्स एंड एसईजेड, अदानी पावर, अदानी टोटल गैस, अंबुजा सीमेंट और सांघी इंडस्ट्रीज—सभी में उल्लेखनीय बढ़त देखी गई। यह दर्शाता है कि व्यापारिक अनिश्चितता कम होने पर बाजार भावना कितनी तेजी से बदल सकती है।

तो अंततः प्रश्न यह है कि इस समझौते से अधिक लाभ किसे हुआ—भारत या अमेरिका?

भारत के लिए लाभ वास्तविक लेकिन सीमित हैं। उसे निर्यात राहत, बेहतर मूल्य प्रतिस्पर्धा, मजबूत निवेशक भावना और मुद्रा पर कुछ दबाव में कमी मिली है। साथ ही, एक बड़े रणनीतिक साझेदार के साथ दीर्घकालिक संबंध मजबूत हुए हैं। लेकिन ये लाभ परिवर्तनकारी नहीं, बल्कि वृद्धिशील और क्षेत्र-विशिष्ट हैं।

अमेरिका के लिए लाभ अधिक व्यापक प्रतीत होते हैं। कम टैरिफ से अमेरिकी उपभोक्ताओं और कंपनियों को सस्ते भारतीय उत्पाद मिलते रहेंगे, जबकि भारत द्वारा अमेरिकी ऊर्जा, कृषि और प्रौद्योगिकी उत्पादों की खरीद बढ़ाने की प्रतिबद्धता सीधे अमेरिकी उत्पादकों को लाभ पहुंचाती है। साथ ही, यह समझौता वाशिंगटन के घरेलू राजनीतिक और रणनीतिक उद्देश्यों को भी आगे बढ़ाता है।

व्यवहार में देखा जाए तो अमेरिका को रणनीतिक दृष्टि से बड़ी बढ़त मिलती दिखाई देती है—उसे भारतीय बाजार में व्यापक पहुंच, ऊर्जा प्रवाह पर प्रभाव और वैश्विक व्यापार समीकरणों में अपनी स्थिति मजबूत करने का अवसर मिलता है। भारत ने प्रतिस्पर्धात्मकता और बाजार विश्वास तो अर्जित किया है, लेकिन कुछ नीतिगत लचीलेपन और ऊर्जा स्रोतों के विकल्प की कीमत पर।

अंततः, यह समझौता एक संतुलित लेकिन जटिल सौदा है—जहां तात्कालिक राहत और दीर्घकालिक रणनीतिक गणित साथ-साथ चलते हैं। वास्तविक सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि भारत इस अवसर को व्यापक आर्थिक सुधार, निर्यात विविधीकरण और घरेलू प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने में किस हद तक बदल पाता है।

मिला जिला सन्देश देता वर्ष 25 - 26 का बजट

प्रो शिवाजी सरकार

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण का 2026-27 के लिए 86 मिनट का बजट भाषण राजकोषीय अनुशासन, संरचनात्मक सुधार और सतर्क आर्थिक प्रबंधन का संदेश देने के लिए तैयार किया गया था। सरकार ने इसे स्थिरता और दीर्घकालिक रणनीति का दस्तावेज़ बताया। लेकिन बजट के कुछ ही घंटों बाद बाजारों की प्रतिक्रिया ने संकेत दिया कि निवेशक इसे अलग नज़र से पढ़ रहे हैं।

डेरिवेटिव लेनदेन पर प्रतिभूति लेनदेन कर (एसटीटी) बढ़ाने की घोषणा के बाद सेंसेक्स और निफ्टी में तेज गिरावट आई। वायदा सौदों पर कर को बढ़ाकर 0.05 प्रतिशत और विकल्पों पर 0.15 प्रतिशत कर दिया गया। सरकार का उद्देश्य अटकलों पर अंकुश लगाना और अत्यधिक सट्टेबाजी को नियंत्रित करना था, लेकिन बाजार ने इसे तरलता पर चोट के रूप में देखा। विदेशी संस्थागत निवेशक, जो पहले से ही उभरते बाजारों के प्रति सतर्क हैं, इस कदम से आश्वस्त नहीं हुए। वॉल्यूम में कमी और अस्थिरता ने संकेत दिया कि यह केवल कर वृद्धि का मामला नहीं, बल्कि भरोसे की नाजुक स्थिति का प्रतिबिंब था।

निवेशकों की बेचैनी व्यापक राजकोषीय गणित से भी जुड़ी थी। लगभग ₹17 लाख करोड़ का राजकोषीय घाटा और करीब ₹11 लाख करोड़ की सकल बाजार उधारी इस बात का संकेत है कि सरकार पूंजी बाजार से बड़े पैमाने पर संसाधन जुटाएगी। इससे निजी क्षेत्र के लिए पूंजी की उपलब्धता पर दबाव पड़ सकता है और ब्याज दरें ऊंची बनी रह सकती हैं। विकास को गति देने के लिए कोई बड़ा, साहसिक प्रोत्साहन पैकेज सामने नहीं आया। पूंजीगत व्यय में वृद्धि के संकेत तो मिले, लेकिन वे क्रमिक थे, परिवर्तनकारी नहीं। असाधारण रूप से बुलाए गए सप्ताहांत ट्रेडिंग सत्र में भी बाजार के पास उत्साहित होने का पर्याप्त कारण नहीं था।

यदि बजट को ध्यान से पढ़ा जाए तो एक स्पष्ट झुकाव शहरी भारत और विनिर्माण की ओर दिखाई देता है। यह एक सतर्क, रक्षात्मक दृष्टिकोण है जो वैश्विक अनिश्चितताओं के बीच स्थिरता को प्राथमिकता देता है। दुनिया इस समय भू-राजनीतिक तनाव, आपूर्ति श्रृंखला में बाधाओं, संरक्षणवादी प्रवृत्तियों, संभावित टैरिफ खतरों और तीव्र तकनीकी बदलावों से गुजर रही है। ऐसे माहौल में सरकार ने जोखिम लेने के बजाय नियंत्रण और दिशा-निर्देशन का रास्ता चुना है।

विनिर्माण को भारत की विकास रणनीति के केंद्र में पुनर्स्थापित किया गया है, विशेषकर प्रस्तावित भारत-यूरोपीय संघ मुक्त व्यापार समझौते के संदर्भ में। सरकार भारत को यूरोप की आपूर्ति श्रृंखलाओं के लिए एक विश्वसनीय विनिर्माण विकल्प के रूप में स्थापित करना चाहती है। स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रॉनिक्स, सेमीकंडक्टर और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे क्षेत्रों को "एंकर उद्योग" के रूप में देखा जा रहा है—ठीक वैसे ही जैसे 1950 के दशक में स्टील और भारी उद्योगों को माना गया था। राज्य स्वयं को एक इनक्यूबेटर और रणनीतिक चालक के रूप में प्रस्तुत कर रहा है, जो प्राथमिकताएं तय करता है और निजी क्षेत्र से निष्पादन की अपेक्षा करता है।

यहां एक महत्वपूर्ण वैचारिक बदलाव भी दिखाई देता है। सरकार स्वयं को प्रत्यक्ष "कर्ता" के बजाय "चालक" के रूप में देख रही है। वह संकेत देती है, संसाधन आवंटित करती है, नीति ढांचा तैयार करती है—लेकिन विस्तार और निवेश की जिम्मेदारी निजी क्षेत्र पर छोड़ती है। यह मॉडल न पूरी तरह मुक्त बाजार का है और न ही पूर्ण राज्य नियंत्रण का; इसे एक हाइब्रिड या नव-नेहरूवादी रणनीतिक ढांचे के रूप में देखा जा सकता है।

फिर भी, बजट में मांग-पक्ष के पुनरुद्धार

और उपभोग समर्थन पर अपेक्षाकृत कम जोर है। जब घरेलू मांग ही कमजोर हो, तब केवल आपूर्ति-पक्षीय प्रोत्साहन से विनिर्माण विस्तार की उम्मीद करना जोखिम भरा हो सकता है। भारत का अनुभव बताता है कि निर्यात-उन्मुख रणनीति तभी सफल होती है जब घरेलू मांग भी मजबूत हो।

ग्रामीण भारत पर अपेक्षाकृत कम ध्यान इस बजट की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक है। भाषण के लगभग 43 मिनट बाद किसानों की आय का उल्लेख आया। मत्स्य पालन के समर्थन में 500 जलाशयों को पुनर्जीवित करने का प्रस्ताव रखा गया, लेकिन यह प्रतीकात्मक अधिक लगा, संरचनात्मक कम। कृषि को उच्च-मूल्य वाले क्षेत्रों—जैसे बीज, जड़ी-बूटियां, खाद्य प्रसंस्करण और मत्स्य पालन—की ओर मोड़ने का प्रयास तो है, परंतु व्यापक आय स्थिरता और ग्रामीण उपभोग को बढ़ाने के उपाय सीमित दिखते हैं।

खेतों से कारखानों तक—बजट 2026-27 भारत के आर्थिक गुरुत्वाकर्षण को बदलने का संकेत देता है। विनिर्माण, तकनीक और वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं पर जोर, लेकिन ग्रामीण भारत पर अपेक्षाकृत कम ध्यान। क्या यह हाइब्रिड मॉडल भारत को 4 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था की ओर ले जाएगा या असंतुलन बढ़ाएगा?

भारत की लगभग 65 प्रतिशत आबादी अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। कृषि आय अस्थिर है, और ग्रामीण खपत एफएमसीजी से लेकर ऑटोमोबाइल तक कई उद्योगों की मांग को संचालित करती है। यदि शहरी औद्योगिक महत्वाकांक्षा के पक्ष में ग्रामीण क्रयशक्ति कमजोर होती है, तो असमानता बढ़ सकती है और समग्र विकास भी प्रभावित हो सकता है। राजनीतिक रूप से यह जोखिमपूर्ण है, और आर्थिक दृष्टि से भी अल्पदृष्टि साबित हो सकता है।

कर संग्रह में वृद्धि—विशेषकर जीएसटी और आयकर अनुपालन में सुधार के कारण—सरकार की उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत की गई है। लेकिन राजस्व की गुणवत्ता उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी मात्रा। घरेलू वित्तीय बचत जीडीपी के लगभग 5 प्रतिशत तक गिर चुकी है, जो कई दशकों के निम्न स्तरों में से एक है। दूसरी ओर, घरेलू ऋण बढ़ रहा है। उपभोग का वित्तपोषण आय वृद्धि के बजाय उधार के माध्यम से हो रहा है। यह प्रवृत्ति दीर्घकाल में टिकाऊ नहीं है।

यदि परिवारों के वित्तीय बफर घटते रहेंगे, तो सरकार के लिए कर आधार का विस्तार कठिन हो जाएगा। रोजगार सृजन और वेतन वृद्धि के माध्यम से आय बढ़ाने के बजाय यदि राजस्व बढ़ोतरी "सिन टैक्स", लेनदेन शुल्क या उपयोगकर्ता शुल्क पर निर्भर रहती है, तो इसका बोझ मध्यम वर्ग और निम्न आय वर्ग पर पड़ेगा। स्वास्थ्य और शिक्षा में सार्वजनिक निवेश अभी भी सीमित है, जबकि दीर्घकालिक उत्पादकता इन्हीं क्षेत्रों पर निर्भर करती है।

यह बजट एक जटिल संतुलन साधने की कोशिश करता दिखता है—राजकोषीय रूप से संयमित, पर रणनीतिक रूप से सक्रिय; बाजार समर्थक, पर राज्य-निर्देशित; शहरी-केंद्रित, पर बयानबाजी में समावेशी। सरकार निवेशकों को स्थिरता का संदेश देती है, लेकिन साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि वह औद्योगिक दिशा तय करने में सक्रिय भूमिका निभाएगी।

भारत का आर्थिक गुरुत्वाकर्षण केंद्र बदल रहा है—खेतों से कारखानों की ओर, गांवों से मूल्य श्रृंखलाओं की ओर, कल्याणकारी व्यय से औद्योगिक रणनीति की ओर। यह परिवर्तन अपरिहार्य भी हो सकता है, क्योंकि कोई भी देश बिना उत्पादकता वृद्धि और औद्योगिक विस्तार के उच्च आय के स्तर तक नहीं पहुंचा है। लेकिन सवाल यह है कि क्या यह परिवर्तन समावेशी होगा?

4 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था की महत्वाकांक्षा केवल सरकारी पूंजीगत व्यय से पूरी नहीं हो सकती। सतत विकास तब आता है जब परिवार बचत करने में सक्षम हों, कंपनियां आत्मविश्वास के साथ निवेश करें, निर्यात का विस्तार हो और रोजगार व्यापक स्तर पर सृजित हों। जब तक निजी विश्वास—सिर्फ सार्वजनिक व्यय नहीं—विकास का इंजन नहीं बनता, तब तक कागज पर बढ़ता कैपेक्स वास्तविक अर्थव्यवस्था में ठोस परिणाम देने में समय लेगा।

अंततः, यह बजट दिशा देता है, पर गारंटी नहीं। इसकी सफलता भाषण की लंबाई या घोषणाओं की संख्या से नहीं, बल्कि कार्यान्वयन की गुणवत्ता और व्यापक सामाजिक संतुलन से तय होगी। प्रश्न अभी भी वही है: क्या भारत औद्योगिक छलांग लगाते हुए ग्रामीण आधार और मध्यम वर्गीय स्थिरता को साथ रख पाएगा? आने वाले वर्ष इसका उत्तर देंगे।

एक वरिष्ठ पत्रकार और मीडिया कार्यकर्ता, प्रोफेसर शिवाजी सरकार वित्तीय रिपोर्टिंग में माहिर हैं।

हथियार कूटनीति: आर्थिक संकट के बीच पाकिस्तान की सैन्य महत्वाकांक्षा

प्रो. प्रदीप माथुर

आईएमएफ की शर्तों और खाड़ी ऋण पर निर्भर पाकिस्तान अब हथियार बिक्री के सहारे क्षेत्रीय भूमिका तलाश रहा है। जेएफ-17 से लेकर ड्रोन सौदों तक, रक्षा अभियान तेज है—पर भारत की आर्थिक बढ़त के सामने क्या यह रणनीति टिकाऊ है?

हालाँकि जनरल असीम मुनीर ने न तो कोई औपचारिक सैन्य तख्तापलट किया है और न ही स्वयं को खुले तौर पर पाकिस्तान का शासक घोषित किया है, फिर भी—अब फील्ड मार्शल बनाए जाने के बाद—वे उन अनेक सैन्य कमांडरों की परंपरा में शामिल हो गए हैं जिन्होंने 1947 से पाकिस्तान की राजनीति पर प्रभावी रूप से वर्चस्व बनाए रखा है। आज मुनीर को पाकिस्तान का वास्तविक शक्ति-केंद्र माना जा रहा है—एक महत्वाकांक्षी सैन्य नेता जो ऐसे समय में अपने देश के लिए एक बड़ा अंतरराष्ट्रीय रोल तलाश रहे हैं जब पाकिस्तान अपने इतिहास के सबसे गंभीर आर्थिक संकटों में से एक से गुजर रहा है।

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री स्वयं स्वीकार कर चुके हैं कि देश दुनिया भर में "भिक्षा पात्र" लेकर घूम रहा है। इस्लामाबाद को वित्तीय सहायता पाने के लिए आईएमएफ की कठोर शर्तें माननी पड़ी हैं और साथ ही खाड़ी देशों से ऋण तथा केंद्रीय बैंक जमा के रूप में पूँजी जुटाने की कोशिश करनी पड़ रही है, ताकि डगमगाती अर्थव्यवस्था को किसी तरह स्थिर किया जा सके।

औपचारिक तख्तापलट के बिना भी जनरल असीम मुनीर पाकिस्तान के वास्तविक शक्ति-केंद्र बन चुके हैं। आर्थिक संकट से जूझते देश में वे रक्षा निर्यात के जरिए अंतरराष्ट्रीय प्रभाव बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन क्या सैन्य कूटनीति आर्थिक कमजोरी की भरपाई कर पाएगी?

फिर भी, इस संकट के बीच पाकिस्तान स्वयं को एक क्षेत्रीय हथियार आपूर्तिकर्ता के रूप में पुनः स्थापित करने की कोशिश कर रहा है—मानो आर्थिक कमजोरी के विकल्प के रूप में सैन्य शक्ति का प्रदर्शन किया जा रहा हो।

शक्ति की बिक्री: पाकिस्तान का नया रक्षा अभियान

पाकिस्तान की हालिया रक्षा निर्यात सफलता का एक आधार मई में "ऑपरेशन सन्दूर" के दौरान भारत के विरुद्ध कथित सैन्य प्रदर्शन रहा है। इस्लामाबाद ने इसे एक प्रभावी "काउंटर-एयर अभियान" के रूप में प्रचारित किया और अपने प्रशिक्षण मानकों तथा सैन्य समन्वय को विशेष रूप से पश्चिम एशिया के मुस्लिम देशों को प्रभावित करने के लिए प्रस्तुत किया।

इस प्रचार ने पाकिस्तान को पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका में रक्षा कूटनीति का विस्तार करने में मदद की है। सऊदी अरब और तुर्किये जैसे साझेदारों के साथ-साथ कुछ नए ग्राहक भी इस दायरे में आ रहे हैं।

इसी महीने लीबिया के पूर्वी कमांडर खलीफा हफ्तार ने रावलपिंडी स्थित पाकिस्तानी सेना मुख्यालय का दौरा किया। रिपोर्टों के अनुसार पाकिस्तान ने हफ्तार की लीबियन नेशनल आर्मी के साथ 4 अरब डॉलर का रक्षा समझौता किया है, जिसमें 16 जेएफ-17 लड़ाकू विमान और 12 "सुपर मुशाक" प्रशिक्षण विमान शामिल हैं।

पाकिस्तान सूडान की सशस्त्र सेनाओं को कराकोरम-8 हल्के हमलावर विमान, ड्रोन और वायु रक्षा प्रणाली देने के लिए 1.5 अरब डॉलर के पैकेज को भी अंतिम रूप दे रहा है।

पिछले वर्ष सितंबर में सऊदी अरब ने पाकिस्तान के साथ एक रणनीतिक पारस्परिक रक्षा समझौता किया, जिसमें कहा गया कि एक पर हमला दूसरे पर हमला माना जाएगा—यह इस्लामाबाद के लिए एक प्रतीकात्मक कूटनीतिक उपलब्धि रही।

सैन्य कूटनीति की सीमाएँ

हालाँकि पाकिस्तान स्वयं को एक क्षेत्रीय हथियार आपूर्तिकर्ता के रूप में प्रस्तुत कर रहा है, परंतु कठोर वास्तविकताएँ उसकी महत्वाकांक्षाओं को सीमित करती हैं। आतंकवाद, आंतरिक अस्थिरता और आर्थिक नाजुकता ऐसे संरचनात्मक अवरोध हैं जिन्हें मुनीर और उनके कठोर समर्थक नजरअंदाज नहीं कर सकते।

पाकिस्तान को उम्मीद है कि हथियार सौदों से विदेशी मुद्रा आएगी और अल्पकालिक राहत मिलेगी। यह कुछ हद तक संभव भी है। लेकिन यदि इस्लामाबाद यह समझता है कि केवल हथियार निर्यात से उसकी कूटनीतिक पकड़ बढ़ जाएगी या क्षेत्रीय प्रभाव स्थापित हो जाएगा, तो यह भ्रम है।

खाड़ी क्षेत्र और आसपास के इलाके बड़े वैश्विक शक्तियों के प्रभाव-क्षेत्र हैं। सीमित आर्थिक क्षमता वाला पाकिस्तान वहाँ स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ सकता।

यह प्रश्न और गहरा हो जाता है—पाकिस्तान वास्तव में चाहता क्या है?

क्या वह केवल हथियार बेच रहा है, या अरब दुनिया का "सुरक्षा प्रदाता" बनकर मुस्लिम विश्व का नेतृत्व करने की आकांक्षा रखता है?

ऐसी महत्वाकांक्षाएँ पाकिस्तान की अपनी अस्थिरता से टकराती हैं—बलूचिस्तान में उग्रवाद, अफगानिस्तान के साथ बढ़ता तनाव और घरेलू हिंसा।

भारत की तुलना में आर्थिक कमजोरी

पाकिस्तान स्वयं को सैन्य रूप से सक्षम दिखाने की कोशिश करता है, लेकिन उसके पास वह आर्थिक शक्ति नहीं है जिससे बड़े और टिकाऊ साझेदारी संबंध बन सकें।

बलूचिस्तान में हिंसा, अफगान सीमा तनाव और घरेलू अस्थिरता के बीच पाकिस्तान "क्षेत्रीय सुरक्षा प्रदाता" बनने का सपना देख रहा है। सवाल यह है—क्या अंदरूनी कमजोरियाँ उसकी बाहरी महत्वाकांक्षाओं को कमजोर कर देंगी?

पिछले वित्तीय वर्ष में पाकिस्तान को सभी देशों से कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश केवल लगभग 2.5 अरब डॉलर मिला, जबकि जीसीसी देशों के साथ उसका कुल व्यापार लगभग 20 अरब डॉलर रहा।

इसके विपरीत, भारत को 2024 में अकेले जीसीसी देशों से 4.7 अरब डॉलर का निवेश प्राप्त हुआ और भारत-जीसीसी व्यापार लगभग 179 अरब डॉलर तक पहुँच गया। भारत खाड़ी क्षेत्र में ऊर्जा, प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचे में एक रणनीतिक निवेशक बन चुका है।

पाकिस्तान सैन्य उपकरण बेच सकता है, लेकिन भारत के समान आर्थिक साझेदार नहीं बन सकता।

पश्चिम एशियाई देश अब केवल रक्षा सहयोग नहीं, बल्कि ऊर्जा, व्यापार, निवेश, तकनीक और आपूर्ति श्रृंखला जैसे व्यापक संबंध चाहते हैं।

मुनीर शायद इस सच्चाई को कम आँक रहे हैं—सैन्य मूल्य दरवाजे खोल सकता है, लेकिन आर्थिक ताकत के बिना स्थायी रिश्ते नहीं बनते।

आंतरिक हिंसा से कमजोर होती महत्वाकांक्षाएँ

पाकिस्तान की घरेलू अशांति उसकी "क्षेत्रीय सुरक्षा प्रदाता" बनने की विश्वसनीयता को और कमजोर करती है।

बलूचिस्तान में हाल ही में हुए समन्वित हमलों में प्रशासनिक केंद्रों और सुरक्षा प्रतिष्ठानों को निशाना बनाया गया, जिसमें 200 से अधिक लोगों की मौत की रिपोर्ट है।

पिछले सप्ताह इस्लामाबाद के पास एक शिया मस्जिद में शुक्रवार की नमाज के दौरान आत्मघाती हमला हुआ, जिसमें 30 से अधिक लोग मारे गए और लगभग 170 घायल हुए। यह राजधानी में तीन महीनों में दूसरा बड़ा हमला था।

उधर अफगानिस्तान के साथ सीमा संघर्ष भी तेज हो गया है। तालिबान शासन सीमा-पार आतंकवाद रोकने में विफल रहा है और पिछले वर्ष इस संघर्ष में 1,000 से अधिक लोगों की मौत बताई गई।

कई विश्लेषकों का मानना है कि अफगानिस्तान-पाकिस्तान तनाव अब भारत-पाकिस्तान प्रतिद्वंद्विता से भी अधिक विस्फोटक हो गया है।

आगे का अधिक यथार्थवादी मार्ग

आज पाकिस्तान गंभीर आंतरिक खतरों और शत्रुतापूर्ण सीमाओं के बीच "फँसा हुआ" है। ऐसे हालात में हथियार कूटनीति के माध्यम से क्षेत्रीय नेतृत्व के सपने अव्यावहारिक प्रतीत होते हैं।

क्या पाकिस्तान केवल हथियार बेच रहा है या मुस्लिम विश्व का नेतृत्व चाहता है? सैन्य ताकत दरवाज़े खोल सकती है, पर स्थायी प्रभाव के लिए आर्थिक शक्ति जरूरी है। यह लेख पाकिस्तान की नई रक्षा कूटनीति और उसकी सीमाओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

पाकिस्तान के लिए अधिक विवेकपूर्ण रास्ता यह होगा कि वह भारत के साथ टकराव और जुनूनी प्रतिस्पर्धा छोड़कर एक जिम्मेदार पड़ोसी के रूप में सह-अस्तित्व सीखने की कोशिश करे।

आतंकवाद, शत्रुता और आरोप-प्रत्यारोप उन दो देशों के विवाद हल नहीं कर सकते जो भूगोल, इतिहास और सांस्कृतिक संबंध साझा करते हैं।

जितनी जल्दी असीम मुनीर जैसे नेता इस सच्चाई को समझेंगे, उतना ही अच्छा पाकिस्तान और पूरे क्षेत्रीय स्थिरता के लिए होगा।

वरिष्ठ पत्रकार एवं मीडिया गुरु प्रो. प्रदीप माथुर 'मीडियामैप न्यूज़ नेटवर्क' के प्रमुख तथा एमबीकेएम फाउंडेशन के अध्यक्ष हैं।

एपस्टीन फाइल्स:एक डायरी, कई चेहरे, और दुनिया की बेचैन नींद?

गोपाल मिश्रा

कल्पना कीजिए—एक ऐसे व्यक्ति की डायरी, जो आधिकारिक रूप से मर चुका है, लेकिन उसकी लिखी-पढ़ी पंक्तियाँ आज भी दुनिया की सबसे ताकतवर कुर्सियों को बेचैन कर रही हैं। अदालतों की फाइलों, ईमेल्स, उड़ान रजिस्टरों और गुप्त संपर्कों के बीच छिपे नाम अचानक सुर्खियों में आ जाएँ, तो लोकतंत्र की दीवारें भी सवालों से गूंजने लगती हैं। अमेरिकी यौन अपराधी और वित्तीय नेटवर्कर Jeffrey Epstein की फाइलें केवल अपराध की कहानी नहीं हैं—वे सत्ता, प्रभाव, गोपनीयता और नैतिक जवाबदेही की वैश्विक परीक्षा बन चुकी हैं। छह साल पहले जेल की कोठरी में मिली उसकी लाश के बाद भी उसका नाम राजनीति, कूटनीति और कॉरपोरेट जगत की नसों में दौड़ रहा है। सवाल सिर्फ इतना नहीं कि उसके संपर्क में कौन-कौन थे; असली प्रश्न यह है कि क्या दुनिया की सबसे प्रभावशाली शख्सियतें भी सच के कठघरे में खड़ी होंगी?

फाइलों का नया विस्फोट और वैश्विक हलचल

30 जनवरी 2026 को अमेरिकी न्याय विभाग द्वारा लाखों पन्नों के दस्तावेज सार्वजनिक किए जाने के बाद यह मामला फिर से भड़क उठा। इन दस्तावेजों में राजनेताओं, उद्योगपतियों, राजनयिकों और प्रभावशाली हस्तियों के साथ एपस्टीन के संपर्कों का उल्लेख है। अमेरिकी संसद के दोनों सदनों—United States House of Representatives और United States Senate—ने एक कानून पारित किया, जिसके बाद न्याय विभाग को चरणबद्ध तरीके से फाइलें जारी करनी पड़ीं।

हालांकि सभी दस्तावेज सार्वजनिक नहीं किए जा रहे हैं। जिन फाइलों में पीड़ितों की पहचान, बच्चों के शोषण से जुड़ी सामग्री या चल रही आपराधिक जांच से संबंधित जानकारी है, उन्हें गोपनीय रखा गया है। न्याय विभाग के अनुसार एफबीआई के पास इस मामले से जुड़ा 300 गीगाबाइट से अधिक डेटा मौजूद है—जिसमें तस्वीरें, वीडियो और डिजिटल रिकॉर्ड शामिल हैं।

ट्रंप, क्लिंटन और राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप

फाइलों में अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति Donald Trump का नाम कई संदर्भों में सामने आया है। ट्रंप ने किसी भी आपराधिक संलिप्तता से इनकार किया है और आरोपों को राजनीतिक साजिश बताया है। दिलचस्प बात यह है कि फाइलें सार्वजनिक कराने की प्रक्रिया पर उनके समर्थकों का भी दबाव था।

पूर्व राष्ट्रपति Bill Clinton का नाम भी संपर्क सूची और उड़ान लॉग में दर्ज है। क्लिंटन ने भी किसी गैरकानूनी गतिविधि से संबंध से इनकार किया है।

ब्रिटेन में Prince Andrew पहले से विवादों में रहे हैं। ताजा दस्तावेजों के बाद उन पर सार्वजनिक दबाव और बढ़ा है। वहीं तकनीकी जगत के दिग्गज Bill Gates को भी एपस्टीन से मुलाकातों पर फिर से सफाई देनी पड़ी।

ये सभी नाम इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते कि वे अपराध में शामिल थे, लेकिन यह दिखाते हैं कि एपस्टीन का सामाजिक और राजनीतिक दायरा कितना व्यापक था।

नोम चॉम्स्की का प्रसंग: बौद्धिक प्रतिष्ठा और आत्मस्वीकार

इस विवाद में प्रख्यात भाषाविद् Noam Chomsky का नाम भी उछला। 7 फरवरी 2026 को उनकी पत्नी Valeria Chomsky ने बयान जारी कर स्पष्ट किया कि चॉम्स्की गंभीर स्वास्थ्य स्थिति में हैं और एपस्टीन से उनका संपर्क पेशेवर संदर्भ में था।

वालेरिया ने स्वीकार किया कि एपस्टीन के अतीत की पूरी जानकारी न होना एक गंभीर भूल थी। उन्होंने पीड़ितों के प्रति एकजुटता व्यक्त की और यह भी बताया कि कुछ वित्तीय लेनदेन तकनीकी और पेशेवर कारणों से हुए थे। यह बयान दर्शाता है कि प्रतिष्ठित व्यक्तित्व भी गलत आकलन का शिकार हो सकते हैं।

भारत में सियासी घमासान

भारत में इस मामले ने राजनीतिक तापमान बढ़ा दिया है। कांग्रेस नेता Rahul Gandhi ने मांग की है कि यदि किसी भारतीय का नाम सामने आता है तो निष्पक्ष जांच होनी चाहिए।

दस्तावेजों में उद्योगपति Anil

Ambani और केंद्रीय मंत्री Hardeep Singh Puri के साथ ईमेल संवाद का उल्लेख सामने आया है। दोनों ने किसी भी आपराधिक संलिप्तता से इनकार किया है।

प्रधानमंत्री Narendra Modi के संदर्भ में कुछ ईमेल्स में तीसरे पक्ष द्वारा नाम उल्लेखित होने की बात कही गई, लेकिन भारत के विदेश मंत्रालय ने इसे "दोषी अपराधी की कल्पनाएँ" बताते हुए खारिज कर दिया।

यहां बहस का केंद्र यह है कि क्या संसद में इस विषय पर विस्तृत चर्चा होनी चाहिए, या अपुष्ट दस्तावेजों के आधार पर राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप से बचना चाहिए।

एपस्टीन का नेटवर्क: धन से अधिक प्रभाव की ताकत

एपस्टीन की असली शक्ति उसका धन नहीं, बल्कि उसका नेटवर्क था। न्यूयॉर्क

अमेरिकी संसद द्वारा फाइलें सार्वजनिक किए जाने के बाद ट्रंप, क्लिंटन, प्रिंस एंड्रयू और अन्य प्रभावशाली नाम फिर चर्चा में हैं। भारत में भी राजनीतिक बहस तेज है। क्या यह पारदर्शिता की जीत है या राजनीतिक हथियार? एपस्टीन प्रकरण लोकतंत्र की विश्वसनीयता की परीक्षा बन चुका है।

स्थित उसके आलीशान टाउनहाउस—9 ईस्ट 71 स्ट्रीट—में छिपे कैमरों और डिजिटल स्टोरेज डिवाइस की बरामदगी की खबरें पहले ही आ चुकी थीं। विश्लेषकों का मानना है कि सूचना और संपर्क का यह जाल उसे प्रभावशाली लोगों पर दबाव बनाने में सक्षम बनाता था, हालांकि इस पर अंतिम निष्कर्ष अभी बाकी है।

उसके निजी जेट के उड़ान रिकॉर्ड, कैलेंडर प्रविष्टियाँ और ईमेल्स बताते हैं कि वह स्वयं को "कनेक्टर" के रूप में प्रस्तुत करता था—ऐसा व्यक्ति जो अरबपतियों, नीति-निर्माताओं और राजनेताओं को जोड़ सकता था।

मृत्यु, रहस्य और साजिश सिद्धांत

10 अगस्त 2019 को न्यूयॉर्क की मेट्रोपॉलिटन करेक्शनल सेंटर जेल में एपस्टीन का शव मिला। आधिकारिक रूप से इसे आत्महत्या घोषित किया गया। लेकिन जेल में निगरानी में कथित अनियमितताओं, गार्डों की लापरवाही और हाई-प्रोफाइल कैदी की सुरक्षा पर उठे सवालों ने साजिश सिद्धांतों को जन्म दिया।

कई लोग मानते हैं कि उसके पास ऐसे रहस्य थे जो कई ताकतवर लोगों को बेनकाब कर सकते थे। यही कारण है कि उसकी मृत्यु आज भी सार्वजनिक बहस का विषय बनी हुई है।

पारदर्शिता बनाम राजनीतिक उपयोग

एपस्टीन फाइल्स का मामला केवल अपराध की जांच नहीं है; यह लोकतांत्रिक पारदर्शिता और राजनीतिक उपयोग के बीच संघर्ष का प्रतीक बन गया है। एक ओर पीड़ितों के अधिकार और निजता की रक्षा की बात है, दूसरी ओर जनता का यह अधिकार कि सच्चाई सामने आए।

भारत सहित कई देशों में यह बहस तेज है कि क्या नाम मात्र का उल्लेख किसी अपराध का प्रमाण है? या फिर जांच और न्यायिक प्रक्रिया पूरी होने तक संयम आवश्यक है?

निष्कर्ष: सत्ता के शिखर पर नैतिकता की कसौटी

एपस्टीन प्रकरण हमें याद दिलाता है कि सत्ता, प्रतिष्ठा और संपर्क किसी को भी

नोम चॉम्स्की से लेकर उद्योगपतियों और मंत्रियों तक, एपस्टीन के संपर्कों की परतें खुल रही हैं। हालांकि कई लोगों ने किसी भी गलत काम से इनकार किया है, लेकिन यह मामला दिखाता है कि प्रभाव और पहुंच का नेटवर्क कितना गहरा था। सच और साजिश के बीच दुनिया जवाब तलाश रही है।

नैतिक जिम्मेदारी से मुक्त नहीं करते। यह मामला केवल एक व्यक्ति के अपराधों की कहानी नहीं, बल्कि उस वैश्विक तंत्र का आईना है जिसमें प्रभाव, गोपनीयता और शक्ति का गठजोड़ लोकतांत्रिक मूल्यों को चुनौती देता है।

जैसे-जैसे और दस्तावेज सामने आएंगे, यह बहस और गहरी होगी। संभव है कि कई नाम अंततः निर्दोष साबित हों, और संभव है कि कुछ के लिए यह राजनीतिक और नैतिक संकट का कारण बने। लेकिन एक बात स्पष्ट है—दुनिया अब पहले की तरह चुप नहीं रहेगी।

एपस्टीन की डायरी भले ही बंद हो चुकी हो, लेकिन उसके पन्नों की गूंज अभी भी वैश्विक सत्ता गलियारों में सुनाई दे रही है।

लेखक वरिष्ठ पत्रकार है अंतरराष्ट्रीय विषयों पर वह आधिकारिक रूप से मीडिया लेखन करते हैं।

संसद के वर्तमान सत्र का हंगामा और हमारी गौरवशाली परम्परा

मीडियम मैप न्यूज ब्यूरो

यह सप्ताह संसद में अभूतपूर्व हंगामे का रहा। विपक्ष स्पष्ट रूप से आक्रामक और प्रभावी दिखा, जबकि सरकार न तो विपक्ष को शांत कर सकी और न ही उसे संतुष्ट कर सकी। प्रधानमंत्री लोकसभा में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव का जवाब नहीं दे सके, और ऐसा प्रतीत हुआ कि विपक्ष के नेता ने सदन की कार्यवाही पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया, जबकि अध्यक्ष Om Birla ने स्थिति को नियंत्रित करने का प्रयास किया। अंततः स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि अध्यक्ष के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव का नोटिस तक दाखिल कर दिया गया।

बहस का स्वरूप काफी हद तक अनुमानित था। सत्तारूढ़ दल के सदस्यों ने बजट की उपलब्धियों का श्रेय प्रधानमंत्री को देते हुए उसकी प्रशंसा की। दूसरी ओर, विपक्ष के नेता से लेकर लगभग सभी विपक्षी सदस्यों ने बजट की तीखी आलोचना की। Rahul Gandhi, चाहे कोई उन्हें पसंद करे या नहीं, अपनी तीक्ष्ण और आक्रामक टिप्पणियों के कारण बहस के केंद्र में रहे। उन्होंने सीमित आँकड़ों का उपयोग करते हुए बजट पर तीखा प्रहार किया।

कांग्रेस नेता P. Chidambaram ने बिना कठोर शब्दों का प्रयोग किए आँकड़ों के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि बजट किन महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर ध्यान देने में विफल रहा। पूर्व वित्त और वाणिज्य मंत्री होने के नाते उन्हें यह भली-भाँति ज्ञात है कि किन बिंदुओं पर सरकार को घेरा जा सकता है। तृणमूल कांग्रेस के Abhishek Banerjee और कल्याण बनर्जी, डीएमके के तिरुची शिवा, राजद के मनोज झा, शिवसेना (यूटी) की Priyanka Chaturvedi, समाजवादी पार्टी के Akhilesh Yadav, कांग्रेस के राजीव शुक्ला और कई अन्य विपक्षी नेताओं ने भी उतनी ही प्रभावशाली आलोचना प्रस्तुत की।

> *संसद में अभूतपूर्व हंगामे के बीच विपक्ष ने सरकार को घेरा, जबकि जवाबदेही और निष्पक्षता पर गंभीर सवाल उठे।*

यह स्थिति उस दौर की याद दिलाती है जब Jawaharlal Nehru के समय संसद में उच्च स्तर की आलोचना और विचार-विमर्श हुआ करता था। उस समय कांग्रेस के भीतर से ही और साथ ही कम्युनिस्ट, जनसंघ और समाजवादी दलों के नेताओं द्वारा सरकार की कठोर आलोचना की जाती थी। चंद्रशेखर और मोहन धारिया जैसे युवा नेता अक्सर अपनी स्पष्टवादिता के कारण सुर्खियों में रहते थे।

दुर्भाग्यवश, दल-बदल विरोधी कानून और उसकी कठोर व्यवस्थाओं ने राजनीतिक दलों को अत्यधिक नियंत्रित और केंद्रीकृत बना दिया है, जिससे स्वतंत्र अभिव्यक्ति की भावना प्रभावित हुई है। संविधान और संसदीय परंपराएँ संसद को स्वतंत्र संवाद का मंच मानती हैं। कई कानून—जिन्हें कभी-कभी 'फिरोज गांधी अधिनियम' की भावना से जोड़ा जाता है—यह सुनिश्चित करते हैं कि संसद सदस्य सदन में स्वतंत्र रूप से बोल सकें और उन्हें पूर्ण संरक्षण प्राप्त हो। इसके विपरीत, आज आलोचनात्मक आवाजों को विशेषाधिकार नोटिस, निष्कासन की धमकी या व्यवधानों के माध्यम से दबाने के प्रयासों की शिकायतें सामने आती हैं।

राहुल गांधी की बजट पर टिप्पणी

राहुल गांधी का बजट भाषण कर दरों और व्यय तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने राष्ट्रीय संप्रभुता, वैश्विक प्रभाव और रणनीतिक संसाधनों पर ध्यान केंद्रित किया। उनके सबसे चर्चित वक्तव्यों में व्यापार समझौते को "भारत माता की बिक्री" जैसा बताना और यह चेतावनी देना शामिल था कि अमेरिका के साथ समझौते भारत के ऊर्जा और औद्योगिक भविष्य को प्रभावित कर सकते हैं। यह रणनीति बजट बहस को एक व्यापक राष्ट्रीय विमर्श में परिवर्तित करने का प्रयास प्रतीत हुई।

उन्होंने आरोप लगाया कि सरकार वैश्विक वार्ताओं में कमजोर स्थिति में है और भारत के दीर्घकालिक हितों के बजाय अल्पकालिक राजनीतिक लाभ को प्राथमिकता दे रही है। उनकी स्पष्ट और आक्रामक भाषा ने उनके भाषण को

संसदीय सत्र के सबसे नाटकीय क्षणों में से एक बना दिया, जबकि सत्तापक्ष ने इसका कड़ा विरोध किया।

उनकी टिप्पणियों में आर्थिक आलोचना के साथ-साथ भू-राजनीतिक संदर्भ भी शामिल थे। उन्होंने मार्शल आर्ट्स जैसे रूपकों—पकड़, घोंटना और आत्मसमर्पण—का उपयोग करते हुए यह तर्क दिया कि सरकार ने भारत के हितों की रक्षा करने के बजाय अपनी रणनीतिक स्थिति कमजोर कर दी है। यह भाषण भले ही विवादास्पद रहा हो, लेकिन इसने यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया कि बजट निर्णय भारत की वैश्विक स्थिति को कैसे प्रभावित करते हैं।

सत्तापक्ष के सदस्यों ने उनके आरोपों का विरोध करते हुए उन्हें अतिरंजित और निराधार बताया। बहस के दौरान कई बार नारेबाजी और व्यवधान हुए, जो संसद में बढ़ते राजनीतिक ध्रुवीकरण को दर्शाते हैं।

राहुल गांधी ने यह भी दावा किया कि भारत-अमेरिका अंतरिम व्यापार समझौता भारत की कमजोर वार्ता स्थिति को दर्शाता है। उन्होंने आरोप लगाया कि सरकार ने डेटा, डिजिटल व्यापार नियमों और शुल्क नियंत्रण जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में पर्याप्त पारस्परिक लाभ के बिना समझौता किया है, जिससे भारत की स्वायत्तता प्रभावित हो सकती है। उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि ऐसे समझौते किसानों और घरेलू उद्योगों—विशेषकर वस्त्र उद्योग—को नुकसान पहुँचा सकते हैं।

हालाँकि, सदन में सदस्यों की आवाज को दबाने और टिप्पणियों को रिकॉर्ड से हटाने की घटनाओं ने नए विवाद खड़े किए हैं।

संसदीय परंपराओं की बदलती प्रकृति

अतीत में सत्तारूढ़ दल अक्सर अपनी उदारता का प्रदर्शन करते थे। संसद सदस्य आज भी याद करते हैं कि कैसे पंडित जवाहरलाल नेहरू ने युवा सांसद Atal Bihari Vajpayee की तीखी लेकिन विश्लेषणात्मक आलोचना की खुले दिल से सराहना की थी। लोकतंत्र के इस पवित्र मंच पर अपमानजनक भाषा का प्रयोग नहीं होता था, जबकि आज यह प्रवृत्ति बढ़ती दिखाई देती है।

अध्यक्ष हस्तक्षेप करते थे, लेकिन व्यवधान नहीं डालते थे। उनके हस्तक्षेप आदेश के बजाय सौम्य और संतुलित होते थे। सदस्य भी मुस्कान या हास्य के साथ अपनी बात सुधार लेते थे। यह लोकतांत्रिक संवाद की परिपक्वता का प्रतीक था।

आज भारत की जनता चाहती है कि संसद फिर से उसी गरिमा, सम्मान और रचनात्मक बहस की परंपरा को पुनर्स्थापित करे। संसद केवल टकराव का मंच नहीं, बल्कि संवाद, जवाबदेही और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा का संस्थान है।

4 फरवरी 2026 को लोकसभा में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर परंपरागत बहस हुई। अध्यक्ष के रूप में Om Birla का संवैधानिक दायित्व है कि वे संविधान के अनुच्छेद 87(2) और लोकसभा के नियम 20(1) के अनुसार कार्यवाही का संचालन करें।

यह नियम स्पष्ट रूप से कहता है कि प्रधानमंत्री या कोई अन्य मंत्री बहस के अंत में सरकार की ओर से उत्तर देने के लिए बाध्य है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकार संसद के प्रति जवाबदेह रहे।

इसके बावजूद, 6 फरवरी को अध्यक्ष ने सदन को सूचित किया कि उन्होंने प्रधानमंत्री Narendra Modi को उपस्थित न होने की सलाह दी थी, यह कहते हुए कि खुफिया रिपोर्टों के अनुसार विपक्ष व्यवधान उत्पन्न कर सकता है।

इस निर्णय ने कई प्रश्न खड़े किए। आलोचकों का कहना है कि यदि सुरक्षा चिंता थी, तो कोई अन्य मंत्री उत्तर दे सकता था। सरकार की चुप्पी अनिवार्य नहीं, बल्कि एक स्वीकृत विकल्प थी।

इससे अध्यक्ष की निष्पक्षता और संसदीय परंपराओं पर प्रश्न उठे हैं। जब कार्यपालिका को जवाबदेही से बचने की अनुमति मिलती है, तो संसद की मूल भूमिका कमजोर होती है।

2023 में Mallikarjun Kharge और राहुल गांधी के भाषणों के कुछ हिस्सों को रिकॉर्ड से हटाए जाने पर भी विवाद हुआ था। आलोचकों का कहना था कि इससे विपक्ष की निगरानी भूमिका प्रभावित हुई।

इसी प्रकार, भाजपा सांसद रमेश बिधूड़ी द्वारा सांसद दानिश अली के खिलाफ विवादास्पद टिप्पणी पर अध्यक्ष की प्रतिक्रिया को भी कई लोगों ने अपर्याप्त बताया।

इन घटनाओं ने संसदीय निष्पक्षता और लोकतांत्रिक जवाबदेही पर व्यापक बहस को जन्म दिया है।

मूल प्रश्न स्पष्ट है: संसद तभी प्रभावी होती है जब सरकार उसके प्रति जवाबदेह हो। जब जवाबदेही कमजोर होती है, तो लोकतंत्र भी कमजोर होने लगता है।

राजनीतिक प्रासंगिकता के लिए वामपंथ सांस्कृतिक जड़ों की ओर

प्रो. प्रदीप माथुर

भारत के राजनीतिक परिदृश्य से कभी अत्यंत प्रभावशाली रहे वामपंथी दलों का पतन और हाशियाकरण जितना रहस्यमय है, उतना ही लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए चिंताजनक भी। बीते कुछ दशकों में इस क्षरण को समझाने के लिए अनेक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गईं, किंतु अब तक कोई एक ठोस और सर्वमान्य उत्तर सामने नहीं आया। यह लगातार होती कमजोरी इसलिए भी विरोधाभासी प्रतीत होती है क्योंकि वस्तुगत सामाजिक परिस्थितियाँ—बढ़ती असमानता, बेरोज़गारी, कृषि संकट और संपत्ति का संकेन्द्रण—सैद्धांतिक रूप से समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राजनीति के लिए उपजाऊ ज़मीन प्रदान करती हैं।

शक्तिशाली न्यूयॉर्क सिटी के मेयर के रूप में युवा ज़ोहरान ममदानी की आश्चर्यजनक जीत ने उदार बुद्धिजीवियों और वामपंथी चिंतकों के बीच एक बार फिर बहस छेड़ दी है। इसने इस प्रश्न पर नए सिरे से आत्ममंथन को प्रेरित किया है कि पूंजीवाद और लोकतंत्र के गहराते संकटों के बावजूद—चाहे वह वैश्विक स्तर पर हों या भारत में—समाजवादी शक्तियाँ प्रासंगिकता क्यों खोती चली गईं।

भारत में कम्युनिस्ट दलों के हाशियाकरण के पीछे एक स्पष्ट कारण उनकी पूर्ववर्ती वैचारिक मुद्रा रही है, जो अक्सर जनभावनाओं से असंगत प्रतीत होती थी। औसत भारतीय के लिए पूर्व सोवियत संघ या चीन जैसे दूरस्थ वैचारिक केंद्रों के प्रति खुली निष्ठा को समझना कठिन था। राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों ने इस दूरी का लाभ उठाते हुए वामपंथ को राष्ट्रीय यथार्थ से कटा हुआ दिखाया। एकाधिकारवादी पूंजीवाद के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय संघर्ष की अवधारणा समाज के बड़े हिस्से से जुड़ नहीं सकी, जो अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों में अधिक गहराई से निहित थे। समय के साथ इससे यह धारणा बनी कि कम्युनिस्ट दल भारत की प्राचीन और विविध सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति उदासीन हैं, बल्कि कभी-कभी शत्रुतापूर्ण भी—जबकि अधिकांश भारतीय इन पर गर्व करते हैं।

अब वामपंथ के भीतर यह समझ तेज़ी से उभर रही है कि संस्कृति को हाशिये पर नहीं रखा जा सकता। भारत जैसे देश में संस्कृति केवल सौंदर्यबोध का क्षेत्र नहीं है; यह पहचान, समुदाय और राजनीतिक लामबंदी का केंद्रीय आधार है। विशेषकर ऐसे समय में, जब लोकतांत्रिक मूल्यों पर निरंतर हमला हो रहा हो, संस्कृति प्रतिरोध का एक सशक्त औज़ार बन सकती है।

इस नए चिंतन की अभिव्यक्ति पिछले महीने केरल में देखने को मिली, जब मुख्यमंत्री कॉमरेड पिनराई विजयन ने तीन दिवसीय, अपने तरह के पहले सांस्कृतिक कांग्रेस का उद्घाटन किया। अपने स्पष्ट और आत्मालोचनात्मक उद्घाटन भाषण में विजयन ने स्वीकार किया कि सांस्कृतिक कांग्रेस कम्युनिस्ट आंदोलन के लिए एक नई पहल है। विज्ञान कांग्रेस, इतिहास कांग्रेस और इसी प्रकार के अन्य मंच परिचित रहे हैं, लेकिन संस्कृति को समर्पित अखिल भारतीय स्तर का आयोजन एक महत्वपूर्ण प्रस्थान है। फिर भी, उन्होंने तर्क दिया कि भारत की मौजूदा परिस्थितियाँ ऐसी पहल को न केवल प्रासंगिक बनाती हैं, बल्कि अत्यंत आवश्यक भी।

विजयन ने चेतावनी दी कि सांप्रदायिक शक्तियाँ सक्रिय रूप से उस धर्मनिरपेक्ष सांस्कृतिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करने में लगी हैं, जिसने ऐतिहासिक रूप से विविध आस्थाओं और जीवन-शैलियों के लोगों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व सुनिश्चित किया है। उनके अनुसार दाँव पर भारत के सामाजिक अस्तित्व की समावेशी प्रकृति है, जो राष्ट्रीय एकता के लिए गंभीर खतरा पैदा करती है। इसी पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक कांग्रेस का महत्व और बढ़ जाता है। उन्होंने संतोष व्यक्त किया कि आयोजकों ने इस ऐतिहासिक आवश्यकता को पहचाना और केरल सरकार के सहयोग से अनेक सांस्कृतिक संस्थानों और अकादमियों के संयुक्त तत्वावधान में एक विशाल आयोजन संभव किया। मुख्यमंत्री ने आशा व्यक्त की कि यह कांग्रेस देश भर में एक स्पष्टसंदेश देगी—कि भारत की जनता राष्ट्र को सांप्रदायिक आधार पर बाँटने के हर प्रयास का प्रतिरोध करेगी। केरल में इस आयोजन का होना भी प्रतीकात्मक था, क्योंकि यह राज्य अपनी दीर्घकालीन धर्मनिरपेक्ष परंपरा और सांप्रदायिकता के विरुद्ध निरंतर संघर्षों के लिए जाना जाता है।

विजयन ने वर्तमान समय को भारत के इतिहास का निर्णायक क्षण बताया। उनके अनुसार संविधान के मूल मूल्यों को नकारने वाली शक्तियाँ लगातार मजबूत हो रही हैं। 2025 में आरएसएस की शताब्दी

का उपयोग आत्ममंथन के बजाय एक विभाजनकारी राजनीतिक परियोजना को आक्रामक ढंग से आगे बढ़ाने में किया गया है, जिसका उद्देश्य भारत को एक संकीर्ण, बहिष्करणकारी राष्ट्र के रूप में पुनर्गठित करना है। उन्होंने चेतावनी दी कि ऐसी परियोजना धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, संघवाद और सामाजिक न्याय की बुनियादों को कमजोर करती है।

यह हमला न तो अमूर्त है और न ही छिपा हुआ। नागरिकता संशोधन अधिनियम जैसे क़ानून नागरिकता को धार्मिक आधार पर पुनर्परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। "एक राष्ट्र, एक चुनाव" जैसे प्रस्ताव संघवाद को कमजोर कर सत्ता के केंद्रीकरण की दिशा में बढ़ते हैं। मतदाता सूचियों में बड़े पैमाने पर और मनमाने संशोधन लाखों लोगों के मतदान अधिकारों के लिए खतरा हैं। ज्ञान, संस्कृति और इतिहास की रक्षा के लिए बने संस्थानों को एक खास वैचारिक एजेंडे के अनुरूप ढाला जा रहा है। जब राज्य स्वयं बहुलतावाद को क्षीण करने और असहमति को दबाने का औज़ार बन जाए, तब प्रतिरोध विकल्प नहीं, कर्तव्य बन जाता है।

ऐसे मोड़ पर संस्कृति एक केंद्रीय राजनीतिक भूमिका ग्रहण करती है। इतिहास बताता है कि तानाशाही और फासीवादी ताक़तें सबसे पहले संस्कृति पर प्रहार करती हैं। मुसोलिनी ने लोकज्ञान पर प्रतिबंध लगाया; हिटलर कला से डरता था—उसने किताबें जलाईं और संकीर्ण दृष्टिकोणों को चुनौती देने वाली कृतियों को नष्ट किया। लेखक, कलाकार, इतिहासकार और विवेकवादी चिंतक इसलिए निशाना बनाए जाते हैं क्योंकि संस्कृति आलोचनात्मक चेतना, सामूहिक स्मृति और नैतिक साहस को पोषित करती है।

भारत में इस भय का रूप हिंसा में भी देखा गया है। नरेंद्र दाभोलकर, गोविंद पानसरे, एम.एम. कलबुर्गी और गौरी लंकेश जैसे विवेकवादी और बुद्धिजीवी अंधविश्वास, जातिगत पदानुक्रम और सांप्रदायिक राजनीति पर प्रश्न उठाने के कारण हत्या का शिकार हुए। पेरुमल मुरुगन जैसे लेखक धमकियों और भयादोहन के चलते मौन कर दिए गए। स्टैन स्वामी जैसे कार्यकर्ताओं को उनके अंतिम दिनों में भी गरिमा से वंचित रखा गया—यह दर्शाता है कि किस तरह राज्य मशीनरी और गढ़े गए मामलों का इस्तेमाल असहमति को कुचलने के लिए किया जाता है। ये अलग-थलग घटनाएँ नहीं, बल्कि ऐसे वातावरण की चेतावनियाँ हैं जहाँ स्वतंत्र चिंतन को ही अपराध बना दिया गया है।

साथ ही, इतिहास और ज्ञान के केसरियाकरण की एक व्यवस्थित प्रक्रिया चल रही है। प्रतिष्ठित धर्मनिरपेक्ष इतिहासकारों को हाशिये पर डाला जा रहा है, शैक्षणिक संस्थानों का पुनर्गठन किया जा रहा है और सलाहकार निकायों को भंग कर वैचारिक रूप से अनुकूल व्यक्तियों को स्थापित किया जा रहा है। शोध को साक्ष्य-आधारित पड़ताल से हटाकर सरलीकृत सांप्रदायिक आख्यानों की ओर मोड़ा जा रहा है। यह प्रयास केवल अतीत को नियंत्रित करने का नहीं, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों की चेतना को आकार देने का है।

इस निराशाजनक पृष्ठभूमि के बरअक्स, विजयन ने केरल के इतिहास को एक प्रतिदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। राज्य की सामाजिक प्रगति उसकी जीवंत सांस्कृतिक और बौद्धिक परंपराओं से अविभाज्य है—श्री नारायण गुरु और अय्यंकाली के नेतृत्व वाले पुनर्जागरण आंदोलनों से लेकर प्रगतिशील साहित्य, रंगमंच और लोककलाओं तक, जिन्होंने गाँवों और गलियों तक विचार पहुँचाए। केरल में संस्कृति कभी अभिजात वर्ग तक सीमित नहीं रही; वह जाति उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध संघर्षों से जुड़कर एक जनशक्ति बनी। कम्युनिस्ट आंदोलन ने इन सांस्कृतिक धाराओं को निरंतरता दी और भूमि सुधार, शिक्षा तथा श्रम अधिकार जैसी परिवर्तनकारी नीतियों में उन्हें रूपांतरित किया।

फिर भी, विजयन ने आगाह किया कि इस विरासत को स्वाभाविक मान लेना खतरनाक होगा। संस्कृति को राजनीति से अलग करने के प्रयास एक भ्रम हैं। हर सांस्कृतिक कर्म का एक राजनीतिक संदर्भ होता है, और अन्याय के समय मौन रहना केवल दमन को मजबूत करता है।

अपने समापन वक्तव्य में उन्होंने कहा कि इतिहास हर पीढ़ी की परीक्षा लेता है, और यही परीक्षा आज हमारी है—जिसका सामना स्पष्टता, साहस और अडिग संकल्प के साथ करना होगा।

क्या यह सांस्कृतिक कांग्रेस और विजयन का स्पष्ट वक्तव्य खोई हुई राजनीतिक ज़मीन को वापस पाने के लिए एक सुविचारित रणनीतिक पुनर्संयोजन का संकेत है, या फिर यह मुख्यतः एक बौद्धिक अभ्यास बनकर रह जाएगा—यह तो समय ही बताएगा। लेकिन इतना स्पष्ट है कि वामपंथ ने यह समझना शुरू कर दिया है कि सांस्कृतिक धरातल को पुनः हासिल किए बिना उसका राजनीतिक पुनरुत्थान अधूरा ही रहेगा

संस्कृति के बिना वामपंथ का पुनरुत्थान असंभव

क्या केरल और पश्चिम बंगाल फिर से वामपंथियों को वोट देंगे?

केएरालाऔर पश्चिम बंगाल विश्व राजनीतिक इतिहास में एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। वे एक कार्यशील लोकतंत्र में मतपत्र के माध्यम से कम्युनिस्ट सरकारों को सत्ता में लाने वाले पहले क्षेत्र थे। इस उपलब्धि को मार्क्सवाद के प्रशंसकों द्वारा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस बात के प्रमाण के रूप में मनाया गया कि समाजवादी परिवर्तन न केवल क्रांति के माध्यम से बल्कि शांतिपूर्ण, संवैधानिक साधनों के माध्यम से भी प्राप्त किया जा सकता है। लाखों गरीबों और हाशिए पर रहने वाले लोगों के लिए, ये जीत समानता और सामूहिक कल्याण पर निर्मित एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की संभावना का प्रतीक है।

हालाँकि, आज वह विरासत एक चौराहे पर खड़ी है। पश्चिम बंगाल में माकपा नीत वाम मोर्चे का 34 साल का निर्बाध शासन अब एक बंद अध्याय बन गया है, जबकि केरल में माकपा के नेतृत्व वाले वाम लोकतांत्रिक मोर्चा को आगामी विधानसभा चुनावों में एक कड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। समाजवाद के समर्थकों के लिए, यह क्षण गंभीर आत्मनिरीक्षण की मांग करता है। सत्ता में लंबे समय तक रहने के बावजूद मार्क्सवादी पार्टियां लोकतांत्रिक भारत की चेतना में अपनी विचारधारा को गहराई से और स्थायी रूप से समाहित करने में विफल क्यों रहीं?

वर्तमान राजनीतिक माहौल में यह सवाल और भी गंभीर हो जाता है। भाजपा-आरएसएस पारिस्थितिकी तंत्र के तहत, क्रोनी कैपिटलिज्म ने बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार और असमानता को तेज कर दिया है, जबकि जाति और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण गहरा हुआ है। यदि कभी समाजवादी पुनरुत्थान के लिए कोई सामाजिक और आर्थिक संदर्भ परिपक्व था, तो वह अब है। फिर भी वामपंथ इस संकट के अनुरूप बड़े पैमाने पर जन समर्थन जुटाने में असमर्थ रहे हैं। अगर समाजवाद ऐसी परिस्थितियों में बहुसंख्यकों को प्रेरित नहीं कर सकता है, तो यह कब होगा?

> ***चुनावी जीत से आगे, भारत में असली संघर्ष विचारों और सांस्कृतिक आधिपत्य का है—जिसे समझे बिना कोई भी पुनरुत्थान संभव नहीं।***

विदेशों में हो रहे घटनाक्रमों से पहेली और तेज हो गई है। वैश्विक पूंजीवाद के एक प्रमुख केंद्र में युवा जोहरान ममदानी की हालिया जीत और एक लोकतांत्रिक समाजवादी के रूप में उनकी खुली पहचान ने भारत के वामपंथी झुकाव वाले बुद्धिजीवियों के बीच बहस छेड़ दी है। समाजवादी विचारों के लिए लंबे समय से उपजाऊ मिट्टी के रूप में माना जाने वाला देश इसी तरह के पुनरुद्धार का उत्पादन करने में विफल क्यों रहा है?

विश्व स्तर पर, यह प्रश्न अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की विघटनकारी नीतियों के संदर्भ में तात्कालिकता प्राप्त करता है। उनके आक्रामक आर्थिक राष्ट्रवाद, सैन्य शक्ति को तैनात करने की तत्परता के साथ मिलकर, यूरोप, आरआईसी देशों और अधिकांश विकासशील दुनिया को अस्थिर कर दिया है। कई लोगों को डर है कि इस तरह की राजनीति बीसवीं सदी की महान आपदाओं से पहले की स्थितियों से मिलती-जुलती परिस्थितियों को फिर से बना सकती है। महाद्वीपों में, चिंतनशील दिमाग पूछ रहे हैं कि क्या केवल वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनावी लोकतंत्र को प्रतिक्रियावादी और सत्तावादी ताकतों द्वारा इतनी आसानी से कब्जा किया जा सकता है, और क्या यह वास्तव में न्यायसंगत और न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था को साकार करने के लिए पर्याप्त है।

इस बड़े पैमाने पर अकादमिक बहस ने ऐसे समय में मार्मिकता को और बढ़ा दिया जब दो महान मार्क्सवादी विचारकों- व्लादिमीर लेनिन और एंटोनियो ग्राम्शी की वर्षगाँठ मनाई जाती है। बोल्शेविक क्रांति के वास्तुकार लेनिन ने प्रदर्शित किया कि कैसे एक दृढ़ अग्रदूत एक दमनकारी शासन को उखाड़ फेंक सकता है। मुसोलिनी के फासीवाद के तहत कारावास का सामना करने वाले इतालवी दार्शनिक ग्राम्शी ने एक अलग लेकिन समान रूप से गहन अंतर्दृष्टि प्रदान की। अपनी *जेल नोटबुक* में, उन्होंने तर्क दिया कि स्थायी राजनीतिक शक्ति न केवल राज्य के नियंत्रण पर बल्कि सांस्कृतिक और वैचारिक "आधिपत्य" पर टिकी हुई है - सामान्य ज्ञान, विश्वासों और मूल्यों को आकार देने की क्षमता।

दोनों विचारकों का मानना था कि भारत जैसे विशाल, औपनिवेशिक रूप से शोषित समाज ने समाजवाद के लिए उपजाऊ जमीन प्रदान की है। भारत के

स्वतंत्रता आंदोलन के कई नेताओं ने इस दृढ़ विश्वास को साझा किया और मार्क्सवादी आदर्शों को साम्राज्यवाद विरोधी और सामाजिक न्याय की भाषा में अनुवाद करने के लिए अथक प्रयास किया। केरल और पश्चिम बंगाल में कम्युनिस्ट पार्टियों की चुनावी सफलताएं इस उम्मीद की पुष्टि करती दिख रही थीं।

फिर भी उस आशावाद के केंद्र में एक महत्वपूर्ण गलत अध्ययन था। कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए वोट की व्याख्या मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थन के रूप में की गई थी, जबकि वास्तव में यह अक्सर विशिष्ट नेताओं और उनकी व्यक्तिगत विश्वसनीयता के लिए एक जनादेश था। सदियों की भक्ति परंपरा से आकार लेने वाले भारत के गहरे धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से निहित समाज में, नेताओं को अक्सर लगभग पवित्र अधिकार के साथ निवेश किया जाता है। अनुयायी भक्त बन जाते हैं, शायद ही कभी अपने चुने हुए व्यक्ति पर सवाल उठाते हैं, और वफादारी अक्सर नेता के उत्तराधिकारियों तक भी फैली होती है। राजनीति, इस अर्थ में, मजबूत सामंती और सांस्कृतिक अंतर्धाराओं को बरकरार रखती है।

इस तरह की व्यक्तित्व-केंद्रित राजनीति अनिवार्य रूप से विचारधारा और नीति से ध्यान हटाती है। चुनाव अभियान कार्यक्रमों या सिद्धांतों के बजाय करिश्माई व्यक्तियों के इर्द-गिर्द घूमते हैं। पार्टी कार्यकर्ता नेताओं से अपने संकेत लेते हैं, सिद्धांत से नहीं, और मतदाता विचारों से अधिक चेहरों का मूल्यांकन करते हैं। इस माहौल में, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पश्चिम बंगाल में वामपंथियों के लंबे शासन ने जनता के बीच गहरी वैचारिक प्रतिबद्धता में तब्दील नहीं किया। जब नेतृत्व लड़खड़ा गया या नए आंकड़े उभरे, तो समर्थन आधार बदल गया, जिससे मार्क्सवाद एक दृढ़ सांस्कृतिक लंगर के बिना रह गया।

यह पैटर्न वामपंथियों तक ही सीमित नहीं है। यह यह भी बताता है कि कैसे वर्तमान सत्तारूढ़ व्यवस्था व्यापक रूप से मजदूर-विरोधी और किसान विरोधी के रूप में देखी जाने वाली नीतियों के बावजूद लोकप्रिय समर्थन प्राप्त कर रही है। भावनात्मक अपीलों, पहचान जुटाने और सावधानीपूर्वक तैयार किए गए आख्यानों के माध्यम से, ध्यान आर्थिक वास्तविकताओं से प्रतीकात्मक मुद्दों की ओर मोड़ दिया जाता है। विचारधारा को भावना से बदल दिया जाता है, और आलोचनात्मक मूल्यांकन विश्वास का मार्ग प्रशस्त करता है।

केरल और पश्चिम बंगाल की समाजवादी विरासत आज संकट में है। यह लेख तर्क देता है कि वामपंथ की कमजोरी चुनावी नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और वैचारिक रही है—और उसका पुनरुत्थान सत्ता नहीं, विचारों की लड़ाई से संभव है।

गहरी त्रासदी यह है कि कई वामपंथी नेता और बुद्धिजीवी भारत के जाति-स्तरीकृत, बहु-धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से विविध समाज के समाजशास्त्र को पर्याप्त रूप से समझने में विफल रहे। अक्सर शहरी, उच्च वर्ग के परिवेश में निहित और मार्क्सवाद या फैबियन समाजवाद के अमूर्त संस्करणों से प्रभावित होकर, उन्होंने भारतीय वास्तविकताओं के लिए पर्याप्त रूप से अनुकूलित किए बिना सैद्धांतिक ढांचे को लागू किया। सांस्कृतिक आधिपत्य के बारे में ग्राम्शी की अंतर्दृष्टि - लोकप्रिय मान्यताओं, परंपराओं और नैतिक दुनिया के साथ जुड़ने की आवश्यकता के बारे में - कभी भी पूरी तरह से आंतरिक नहीं थी।

यदि वामपंथी और प्रगतिशील ताकतों को तानाशाही प्रवृत्तियों और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण से चिह्नित भारत में फिर से प्रासंगिकता हासिल करनी है, तो उन्हें गहन पुनर्विचार करना होगा। इसमें न केवल संगठनात्मक नवीनीकरण शामिल है, बल्कि एक बौद्धिक और सांस्कृतिक पुनर्विन्यास भी शामिल है। समाजवाद पार्टी के दस्तावेजों और सेमिनार हॉल तक ही सीमित सिद्धांत नहीं रह सकता; इसे रोजमर्रा के अनुभव, स्थानीय पहचान और नैतिक आकांक्षाओं से बात करनी चाहिए।

नव-फासीवादी धाराओं के उदय और लोकतांत्रिक मानदंडों के क्षरण की गवाह दुनिया में, चुनौती केवल चुनाव जीतने की नहीं है, बल्कि दिल और दिमाग जीतने की है। असली लड़ाई, जैसा कि ग्राम्शी ने हमें याद दिलाया, विचारों की लड़ाई है। उस इलाके को सुरक्षित किए बिना, कोई भी चुनावी जीत, चाहे वह केरल, पश्चिम बंगाल या कहीं और हो, भारत के राजनीतिक भविष्य में वामपंथियों की स्थायी उपस्थिति सुनिश्चित नहीं कर सकती है।

केरल विधानसभा चुनाव से पहले सीपीएम की कड़ी परीक्षा

जैसे-जैसे केरल 2026 के विधानसभा चुनावों की ओर बढ़ रहा है, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) एक निर्णायक मोड़ पर खड़ी दिखाई दे रही है। जनवरी 2026 में हुई पार्टी की केंद्रीय समिति की बैठक में चुनावी रणनीति को अंतिम रूप देने पर जोर दिया गया, क्योंकि केरल इस समय देश में वामपंथ का एकमात्र शासन वाला राज्य है। बैठक में उम्मीदवारों के लिए दो-कार्यकाल की सीमा में ढील देने जैसे विकल्पों पर भीचर्चा हुई, जो स्थिति की गंभीरता को दर्शाता है।

मुख्यमंत्री पिनराई विजयन के आगामी चुनावों में पार्टी और वाम लोकतांत्रिक मोर्चे (एलडीएफ) का नेतृत्व करने की संभावना है, जबकि वरिष्ठ नेता एम.ए. बेबी रणनीतिक चर्चाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसी बीच, सीपीएम का आरएसएस और भाजपा के साथ वैचारिक टकराव जारी है, खासकर कन्नूर जैसे संवेदनशील इलाकों में कार्यकर्ताओं के बीच झड़पों की खबरें सामने आती रही हैं।

पार्टी को कई मोर्चों पर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सीपीएम लगातार आरोप लगाती रही है कि केंद्र की भाजपा सरकार जानबूझकर केरल को वित्तीय संसाधनों से वंचित कर रही है। वहीं, मंत्री साजी चेरियन के संविधान संबंधी बयानों और करुवन्नूर बैंक मामले में प्रवर्तन निदेशालय की जांच ने सरकार को कटघरे में खड़ा किया है।

एलडीएफ के भीतर सहयोगी दल सीपीआई ने जनविश्वास बहाल करने और सत्ता विरोधी माहौल से निपटने के लिए आत्ममंथन की जरूरत पर जोर दिया है। इसके समानांतर, सरकार 'स्मार्टी' जैसे एआई आधारित नवाचारों के जरिए विकास और तकनीक-आधारित शासन की छवि पेश कर रही है।दूसरी ओर, कांग्रेस के नेतृत्व वाला यूडीएफ मुख्यमंत्री के परिवार से जुड़े कथित भ्रष्टाचार के आरोपों को लेकर उनके इस्तीफे की मांग तेज कर चुका है। सत्ता विरोधी लहर, भ्रष्टाचार के आरोप और भाजपा-यूडीएफ दोनों से बढ़ते दबाव के बीच, सीपीएम के लिए लगातार तीसरी बार सत्ता में लौटना अब 'करो या मरो' की लड़ाई बन चुका है।

दक्षिण एशिया में धार्मिक स्वतंत्रता पर लगते प्रश्नचिह्न

डॉ जॉन दयाल

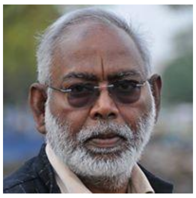

दक्षिण एशिया के आठों देशों में धार्मिक स्वतंत्रता आज एक संवैधानिक आदर्श से फिसलकर एक नाज़ुक और लगातार सिमटते अधिकार में बदल चुकी है। ईसाइयों का उत्पीड़न इस पूरे क्षेत्र में व्यापक है, किंतु हिंदू, मुसलमान, सिख और बौद्ध—कोई भी समुदाय घृणा, हिंसा और राज्य की उपेक्षा से पूरी तरह अछूता नहीं है। जहाँ भी वैध या अवैध सत्ता का प्रयोग हुआ है, वहाँ धार्मिक पहचान को हथियार बनाया गया है और उसके निशान खून से रंगे रहे हैं।

अफगानिस्तान से लेकर म्यांमार तक, 2025 ने यह साफ़ कर दिया कि आस्था, नागरिकता और पहचान को अब बहुसंख्यक वर्चस्व, थोपी गई धार्मिकता और उग्र राष्ट्रवाद के चश्मे से पुनर्परिभाषित किया जा रहा है। इसके नतीजे कैद, जबरन विस्थापन, नागरिकता से वंचित किए जाने, घरों के ध्वंस और स्थायी भय के रूप में सामने आ रहे हैं। यह संकट क्षेत्रीय है—समान प्रवृत्तियों के साथ, किंतु अलग-अलग राष्ट्रीय रूपों में।

संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी (यूएनएचसीआर) का अनुमान है कि 2025 में लगभग 29 लाख लोगों को पुनर्वास की आवश्यकता होगी, जिनमें अफगान और रोहिंग्या शरणार्थी बड़ी संख्या में हैं। इन समुदायों में अधिकांश मुसलमान हैं, पर एक छोटा ईसाई समूह भी है—जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आस्था-आधारित उत्पीड़न से भागने को मजबूर हुआ है। 2026 के लिए अनुमान और भी चिंताजनक हैं: यदि तत्काल हस्तक्षेप नहीं हुआ, तो हिंसा और विस्थापन दोनों तेज़ होंगे और बहुलतावाद और क्षीण पड़ेगा।

अफगानिस्तान: जहाँ धार्मिक स्वतंत्रता मिट चुकी है

अफगानिस्तान इस संकट का सबसे चरम उदाहरण है। तालिबान के दूसरे इस्लामी अमीरात में धार्मिक स्वतंत्रता सीमित नहीं, बल्कि प्रभावी रूप से समाप्त कर दी गई है। यूएससीआईआरएफ की 2025 रिपोर्ट के अनुसार, धर्म या आस्था की स्वतंत्रता "किसी भी सार्थक अर्थ में अब मौजूद नहीं है।" सुन्नी इस्लाम की कठोर व्याख्या के तहत असहमति, भिन्नता और धर्मांतरण अपराध घोषित हैं।

इस्लाम से धर्मांतरण को मर्तद माना जाता है, जिसकी सज़ा मौत है। देश की नगण्य ईसाई आबादी—लगभग पूरी तरह धर्मांतरित—भूमिगत जीवन जीने को मजबूर है। सिख और हिंदू समुदाय, जो कभी सैकड़ों हज़ारों में थे, अब कुछ सौ लोगों तक सिमट गए हैं। उनके पूजा-स्थल ज़ब्त किए जा चुके हैं और "सुरक्षा" के तालिबानी आश्वासन किसी वास्तविक अधिकार में नहीं बदले।

पाकिस्तान: कानूनों से खोखली की गई आज़ादी

पाकिस्तान का संविधान धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है, लेकिन उसके ईशनिंदा क़ानून—विशेषकर दंड संहिता की धाराएँ 295-बी और 295-सी—इन गारंटियों को निरर्थक बना देती हैं। 2025 में भी यूएससीआईआरएफ ने पाकिस्तान

> *दक्षिण एशिया में धार्मिक स्वतंत्रता अब केवल संवैधानिक वाक्य नहीं, बल्कि एक सिकुड़ता हुआ अधिकार बन चुकी है। अफगानिस्तान से भारत और म्यांमार तक यह लेख दिखाता है कि कैसे बहुसंख्यक वर्चस्व, राष्ट्रवाद और राज्य की मिलीभगत ने आस्था को भय, विस्थापन और हिंसा में बदल दिया है—और क्यों यह संकट किसी एक देश तक सीमित नहीं रहा।*

को "विशेष चिंता का देश" घोषित करने की सिफ़ारिश दोहराई। ईशनिंदा के आरोपों का उपयोग निजी दुश्मनी, ज़मीन हड़पने और भीड़ को उकसाने के लिए आम हो गया है।

ईसाई और हिंदू लड़कियों के जबरन धर्मांतरण और विवाह लगभग पूर्ण दंडमुक्ति के साथ जारी हैं। मानवाधिकार संगठनों के अनुसार, पुलिस अक्सर दबाव और धमकी के स्पष्ट संकेतों के बावजूद मामलों को "स्वैच्छिक" बताकर

बंद कर देती है।

भारत: सूक्ष्म लेकिन दूरगामी क्षरण

भारत में संकट अपेक्षाकृत सूक्ष्म है, किंतु उसके प्रभाव कहीं अधिक गहरे हैं। धार्मिक पहचान अब अधिकारों, संरक्षण और नागरिकता तक पहुँच को तय करने लगी है। यूएससीआईआरएफ की 2025 रिपोर्ट ने भारत को भी "विशेष चिंता का देश" घोषित करने की सिफ़ारिश की, मुसलमानों और ईसाइयों के ख़िलाफ़ व्यवस्थित उल्लंघनों का हवाला देते हुए।

हिंदुत्व विचारधारा का शासन में समेकन, नागरिकता संशोधन अधिनियम का धार्मिक आधार और संभावित राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर—इन सबने व्यापक मताधिकार-वंचना की आशंकाएँ पैदा की हैं। कई राज्यों में लागू धर्मांतरण-विरोधी और तथाकथित "लव जिहाद" क़ानून अंतरधार्मिक संबंधों को अपराधीकरण की ओर ले जा रहे हैं। अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ हिंसा के मामलों में पुलिस की निष्क्रियता और कई बार मिलीभगत ने दंडमुक्ति को मज़बूत किया है।

बांग्लादेश, श्रीलंका और आगे

बांग्लादेश इस समय राजनीतिक अस्थिरता के दौर से गुजर रहा है। हालिया हिंसा में धार्मिक अल्पसंख्यक, विशेषकर हिंदू, असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। डिजिटल सुरक्षा क़ानून का दुरुपयोग असहमति और कथित धार्मिक अपमान को दबाने के लिए हुआ है। वहीं, लगभग दस लाख रोहिंग्या शरणार्थी आज भी अनिश्चित भविष्य के साथ शिविरों में फँसे हैं।

श्रीलंका में सिंहली-बौद्ध राष्ट्रवाद फिर उभार पर है। मुस्लिम समुदाय निगरानी और प्रशासनिक भेदभाव का सामना कर रहा है, जबकि इंजीलवादी ईसाइयों को स्थानीय स्तर पर उत्पीड़न झेलना पड़ता है।

नेपाल और भूटान दिखाते हैं कि बिना खुले दंगों के भी धार्मिक स्वतंत्रता को कैसे सीमित किया जा सकता है—कानूनी बंदिशों और सांस्कृतिक एकरूपता के नाम पर।

म्यांमार: आस्था और युद्ध का संगम

अफगानिस्तान के बाद म्यांमार सबसे विनाशकारी उदाहरण है। 2021 के सैन्य तख़्तापलट के बाद धार्मिक उत्पीड़न गृहयुद्ध से अलग नहीं रहा। रोहिंग्या मुसलमान रंगभेद-सदृश परिस्थितियों में जी रहे हैं, जबकि ईसाई-बहुल राज्यों में चर्चों का विनाश और हवाई बमबारी जारी है।

बौद्ध राष्ट्रवाद और सेना का गठजोड़ संघर्ष को धर्म और नस्ल की रक्षा के रूप में पेश करता है, जिससे विभाजन और गहराते हैं।

दक्षिण एशिया आज एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ धार्मिक स्वतंत्रता या तो सामूहिक राजनीतिक इच्छाशक्ति से बचाई जाएगी—या फिर यह क्षेत्र पहचान-आधारित संघर्षों और अंतहीन विस्थापन का स्थायी भूगोल बन जाएगा।

डॉ. जॉन दयाल भारत के एक प्रमुख ईसाई सामाजिक कार्यकर्ता, मानवाधिकार समर्थक और लेखक हैं। वे विशेष रूप से अल्पसंख्यक अधिकारों, धार्मिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के मुद्दों पर अपनी स्पष्ट और सक्रिय भूमिका के लिए जाने जाते हैं। वे एक प्रभावशाली वक्ता और विचारक माने जाते हैं।

ज्योतिर्पीठ शंकराचार्य विवाद: परंपरा, कानून और सनातन की कसौटी

चंद्र कुमार श्रीवास्तव

भारतीय संस्कृति और सनातन परंपरा के विकास तथा संरक्षण में आदि योगी शंकराचार्य का योगदान अद्वितीय और कालजयी माना जाता है। मात्र आठ वर्ष की आयु में संन्यास धारण करने वाले आदि शंकराचार्य ने अपने अल्प जीवनकाल में संपूर्ण भारत की यात्रा कर चार प्रमुख पीठों की स्थापना की। उत्तर में बदरिकाश्रम ज्योतिर्पीठ, पश्चिम में द्वारिका शारदापीठ, दक्षिण में श्रृंगेरीपीठ और पूर्व में जगन्नाथपुरी गोवर्द्धनपीठ—ये चारों मठ केवल आध्यात्मिक केंद्र ही नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक और वैचारिक एकता के सशक्त प्रतीक हैं। इन्हीं पीठों पर आसीन संन्यासी 'शंकराचार्य' कहलाते हैं।

आदि शंकराचार्य का जन्म 508–509 ईस्वी के आसपास माना जाता है और उन्होंने मात्र 32 वर्ष की आयु में ब्रह्मलीन होकर भी ऐसी परंपरा स्थापित की, जो सदियों बाद भी भारतीय समाज का मार्गदर्शन कर रही है। किंतु विडंबना यह है कि जिस परंपरा की रक्षा और संवर्धन का दायित्व शंकराचार्यों पर था, वही परंपरा आज विवादों, दावों और प्रतिदावों के बीच कठघरे में खड़ी दिखाई देती है।

> *आदि शंकराचार्य की कालजयी परंपरा से उपजा ज्योतिर्पीठ आज आस्था, इतिहास और कानून के टकराव के बीच खड़ा है।*

चारों पीठों में उत्तर दिशा में स्थित बदरिकाश्रम ज्योतिर्पीठ को विशेष धार्मिक महत्व प्राप्त है। देवभूमि में स्थित होने के कारण यह पीठ सदियों से श्रद्धा और आस्था का केंद्र रही है। लेकिन ऐतिहासिक परिस्थितियों के चलते लगभग 165 वर्षों तक यहां शंकराचार्य पद रिक्त रहा। इसी लंबे अंतराल के बाद 1941 में स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती को ज्योतिर्पीठ का शंकराचार्य नियुक्त किया गया।

स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती का जन्म 21 दिसंबर 1871 को सरयूपारी ब्राह्मण परिवार में, वर्तमान अंबेडकर नगर जिले के सुरहुरपुर गांव में हुआ था। उनका बचपन का नाम राजा राम था। आदि शंकराचार्य की परंपरा का अनुसरण करते हुए उन्होंने भी अल्प आयु में ही गृहत्याग कर दिया। नौ वर्ष की अवस्था में गुरु की खोज में निकल पड़े और वर्षों तक कठोर तपस्या की। चौदह वर्ष की आयु में वे स्वामी कृष्णानंद सरस्वती के शिष्य बने और 34 वर्ष की आयु में संन्यास दीक्षा ग्रहण की।

1941 में, 70 वर्ष की आयु में, एक जटिल और लंबी प्रक्रिया के बाद उन्हें ज्योतिर्पीठ शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। उस समय वे विद्वत्ता, तप, साधना और आचरण—तीनों कसौटियों पर सर्वाधिक योग्य माने जाते थे। उनके शिष्यों में स्वामी शांतानंद सरस्वती, स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती, स्वामी करपात्री जी और भावातीत ध्यान के प्रवर्तक महर्षि महेश योगी जैसे प्रतिष्ठित नाम शामिल हैं।

यहीं से ज्योतिर्पीठ शंकराचार्य पद को लेकर कानूनी विवाद की शुरुआत होती है। समर्थकों का दावा है कि स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती ने 1953 में ब्रह्मलीन होने से पांच महीने पूर्व एक वसीयत के माध्यम से

स्वामी शांतानंद सरस्वती को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। हालांकि इस दावे को लेकर लंबे समय तक न्यायालयों में मुकदमे चले।

22 सितंबर 2017 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने First Appeal No. 309/2015 में एक विस्तृत और ऐतिहासिक निर्णय सुनाया। न्यायालय ने निर्णय के पैरा 745 (1) से (3) में स्पष्ट किया कि स्वामी शांतानंद सरस्वती पहले ही 12 जून 1953 को विधिवत रूप से ज्योतिर्पीठ शंकराचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अत: 25 जून 1953 को स्वामी कृष्ण बोधाश्रम की नियुक्ति अवैध और अमान्य ठहराई गई।

न्यायालय ने 15 जनवरी 1970 के उस सिविल कोर्ट निर्णय का भी उल्लेख किया,

शंकराचार्य होना पद नहीं, तप और मर्यादा की साधना है—जिसे नजरअंदाज़ करना सनातन परंपरा को चोट पहुँचाता है।

जिसमें स्वामी शांतानंद सरस्वती की नियुक्ति को वैध और स्वामी कृष्ण बोधाश्रम की नियुक्ति को अवैध माना गया था। उच्च न्यायालय ने इस निर्णय को 'रेस जूडिकेटा' मानते हुए प्रभावी माना और कहा कि चूंकि स्वामी कृष्ण बोधाश्रम की नियुक्ति ही अवैध थी, इसलिए 1973 में उनकी मृत्यु से कोई वैधानिक रिक्ति उत्पन्न नहीं हुई। इसी आधार पर स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती की कथित नियुक्ति भी अवैध मानी गई।

निर्णय में यह भी कहा गया कि स्वामी शांतानंद सरस्वती के त्यागपत्र के बाद स्वामी विष्णुदेवानंद सरस्वती शंकराचार्य बने। उनके निधन के पश्चात 1989 में स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती को पद सौंपा गया, लेकिन पूर्व में शैक्षणिक सेवा में होने के कारण उन्हें संन्यासी न मानते हुए उनकी नियुक्ति भी अवैध ठहराई गई। इस प्रकार न्यायालय ने स्वामी विष्णुदेवानंद सरस्वती को ज्योतिर्पीठ का अंतिम वैध शंकराचार्य माना और 14 नवंबर 1989 के बाद से यह पद रिक्त घोषित किया।

न्यायालय ने यह भी निर्देश दिया कि भविष्य में इस पद को भरने की प्रक्रिया वही होगी, जो 1941 में अपनाई गई थी, तथा चार मठों के शंकराचार्यों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति इस पदनाम या विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता।

इस निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई, लेकिन अब तक न तो इस पर कोई स्थगन लगा है और न ही इसे निरस्त किया गया है। 14 अक्टूबर 2022 को सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट आदेश देते हुए ज्योतिर्पीठ शंकराचार्य पद पर किसी भी प्रकार की नियुक्ति या पट्टाभिषेक पर रोक लगा दी।

इसी पृष्ठभूमि में प्रयागराज कुंभ 2026 से जुड़ा स्वामी अविमुक्तेश्वरानंद प्रकरण सामने आया है। उनके द्वारा स्वयं को शंकराचार्य बताए जाने और गुरु की कथित वसीयत प्रस्तुत किए जाने पर न्यायालयीन आदेशों के आलोक में गंभीर प्रश्न खड़े होते हैं। जब स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती की नियुक्ति ही अवैध मानी जा चुकी है और उन्होंने स्वयं किसी वसीयत से इनकार किया था, तो ऐसी वसीयत का औचित्य स्वतः संदिग्ध हो जाता है।

इस पूरे विवाद में सबसे बड़ी चिंता यह है कि सनातन परंपरा, संत समाज की गरिमा और आम श्रद्धालुओं की आस्था

को गहरी चोट पहुंच रही है। भावनाओं में बहकर तथ्य और कानून की अनदेखी करना उस कहावत की याद दिलाता है—"कौवा कान ले गया और लोग कौवे के पीछे दौड़ पड़े।"

स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती के प्रिय शिष्य महर्षि महेश योगी का उदाहरण बताता है कि शंकराचार्य होना केवल पद का प्रश्न नहीं, बल्कि त्याग, तप, अनुशासन और मर्यादा की कठोर साधना है। आज आवश्यकता है कि इतिहास, परंपरा और न्यायालय के आदेशों के आलोक में इस विवाद को समझा जाए, ताकि सनातन धर्म और उसकी संस्थाओं की गरिमा अक्षुण्ण रह सके।

****

अखिल भारतीय संत समिति के राष्ट्रीय महामंत्री स्वामी जितेंद्रानंद सरस्वती से खास बातचीत के अंश -

प्रश्न : इस बार माघ मेले में स्वामी अभिमुक्तेश्वरानंद को लेकर विवाद कैसे शुरू हुआ?

उत्तर: मौनी अमावस्या को स्वामी अभिमुक्तेश्वरानंद अपने शिविर में न जाकर बाहर बैठे दिखाई दिए। इसके बाद शंकराचार्य पद, स्नान, रथ प्रवेश और प्रशासनिक रोक को लेकर विवाद सामने आया।

प्रश्न : इस विवाद को आप कैसे देखते हैं?

उत्तर: किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वयं को शंकराचार्य घोषित करना इलाहाबाद हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के आदेशों का स्पष्ट अवज्ञा है।

प्रश्न : अविमुक्तेश्वरानंद के वसीयत को लेकर आप का क्या तर्क है?

उत्तर: जिस पद या संपत्ति का टाइटल सूट स्पष्ट न हो, उसकी वसीयत नहीं की जा सकती। ऐसे में शंकराचार्य पद की वसीयत का दावा ही संदेहास्पद है।

प्रश्न : क्या अखाड़ा परिषद या अन्य धार्मिक संस्थाओं ने स्वामी अभिमुक्तेश्वरानंद को शंकराचार्य माना है?

उत्तर: नहीं। अखाड़ा परिषद, अखिल भारतीय संत समिति या काशी विद्वत

परिषद—किसी ने भी अभिमुक्तेश्वरानंद को शंकराचार्य के रूप में स्वीकार नहीं किया है।

प्रश्न : स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती के मुकदमे को लेकर आप का क्या कहना है?

उत्तर: स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती ने कोर्ट में योग्यता के आधार पर मुकदमा लड़ा था, लेकिन इलाहाबाद हाईकोर्ट के निर्णय में उन्हें अयोग्य घोषित किया गया था।

प्रश्न : शंकराचार्य पद की योग्यता का निर्णय कौन करता है?

उत्तर: देखिये शंकराचार्य पद की योग्यता का निर्णय गुरु-शिष्य परंपरा करती है, न कि स्वयं अपने को कोई व्यक्ति। स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती इस परंपरा को स्वीकार नहीं करते थे।

प्रश्न : स्वयं स्वामी स्वरूपानंद की योग्यता विवादित होने पर वसीयत कैसे संभव है?

उत्तर: जब स्वयं की योग्यता पर प्रश्नचिह्न हो, तो उत्तराधिकारी की वसीयत करना ही असंगत है।

(इतिहासपरंपरा)

आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार पीठों की परंपरा भारतीय सांस्कृतिक एकता की रीढ़ रही है। किंतु ज्योतिर्पीठ शंकराचार्य पद से जुड़े लंबे कानूनी विवाद ने इस परंपरा को गहरे प्रश्नों के घेरे में ला खड़ा किया है। यह लेख शंकराचार्य परंपरा के ऐतिहासिक विकास, स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती की नियुक्ति और उच्च न्यायालय व सर्वोच्च न्यायालय के निर्णायक आदेशों के आलोक में बताता है कि कैसे एक कालजयी व्यवस्था आज दावों-प्रतिदावों और भ्रम की शिकार हो गई है।

प्रश्न : अविमुक्तेश्वरानंद के 2013-14 की कथित वसीयत पर क्या सवाल है?

उत्तर: अविमुक्तेश्वरानंद द्वारा 2013-14 की वसीयत का दावा किया जा रहा है, जबकि नवंबर 2020 में स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती ने प्रेस नोट और टीवी इंटरव्यू में स्पष्ट कहा था कि उन्होंने न तो कोई उत्तराधिकारी तय किया है और न ही कोई वसीयत की है।

ज्योतिर्पीठ शंकराचार्य पद केवल आस्था का विषय नहीं, बल्कि न्यायालयों द्वारा परिभाषित एक विधिक वास्तविकता भी है। इलाहाबाद हाईकोर्ट के 2017 के ऐतिहासिक निर्णय और सुप्रीम कोर्ट के स्थगन आदेशों के बावजूद स्वयंभू दावों ने सनातन परंपरा को असमंजस में डाल दिया है। यह लेख विस्तार से बताता है कि किसे वैध शंकराचार्य माना गया,

प्रश्न : स्वामी स्वरूपानंद के ब्रह्मलीन होने के बाद शंकराचार्य घोषित करने पर क्या आपत्ति है?

उत्तर: स्वामी स्वरूपानंद के ब्रह्मलीन होने के बाद अपने गुरु के शव के सामने स्वयं को शंकराचार्य घोषित करना अत्यंत अनुचित और परंपरा-विरोधी है।

प्रश्न : इसमें सुबुद्धानंद ब्रह्मचारी की भी चर्चा होती है उनकी क्या भूमिका है?

उत्तर: सुबुद्धानंद ब्रह्मचारी केवल पीए की भूमिका में थे। उन्हें किसी संन्यासी या शंकराचार्य का अभिषेक करने का कोई अधिकार ही नहीं था।

प्रश्न : मीडिया और राजनीति को लेकर आप का क्या कहना है?

उत्तर: किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वयं को शंकराचार्य बताकर मीडिया में बने रहने के लिए प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री को अपशब्द कहना और राजनीतिक बयान देना, किसी धर्माचार्य के आचरण के अनुरूप नहीं है।

प्रश्न : माघ मेले में स्नान से रोके जाने में प्रशासन की भूमिका पर आप का क्या कहना है?

उत्तर: प्रशासन ने कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए कार्रवाई की। डी-एरिया में किसी भी संत का रथ प्रवेश निषिद्ध है।

प्रश्न : रथ प्रवेश को लेकर आप का क्या कहना है?

उत्तर: जैसा फोटो में दिखाई दिया कि बैरिकेडिंग तोड़कर रथ आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया, जिससे भगदड़ की स्थिति बन सकती थी। यह सस्ती लोकप्रियता के लिए रची गई एक साजिश थी।

प्रश्न : मौनी अमावस्या के स्नान को लेकर इतना तूल क्यों दिया जा रहा है?

उत्तर: मौनी अमावस्या पर करोड़ों श्रद्धालुओं के बीच सभी शंकराचार्य और संत बिना विवाद के पैदल जाकर स्नान कर चुके थे, जबकि किसी एक व्यक्ति द्वारा रथ, चंवर और छत्र के साथ जाने की जिद अनुचित था।

प्रश्न : इस पूरे विवाद पर आप का अंतिम संदेश क्या है?

उत्तर: धर्म को राजनीति से दूर रखा जाना चाहिए। पाखंड और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के कारण धर्म की छवि खराब नहीं होनी चाहिए। हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के अनुसार अभिमुक्तेश्वरानंद शंकराचार्य पद की किसी भी परंपरा के अधिकारी नहीं हैं।

कुंभमेला प्रयागराज 2026: प्रश्नों के कटघरे में हिंदू धर्माचार्यों का अंतर्द्वंद्व

वार्षिक कुंभ मेला केवल गंगा-स्नान का पर्व नहीं, बल्कि हिंदू समाज की सामूहिक चेतना का सबसे बड़ा सार्वजनिक मं**च है। यह** वह अवसर होता है, जहाँ साधना, शास्त्र और समाज आमने-सामने खड़े दिखाई देते हैं। प्रयागराज 2026 का कुंभ इसी दृष्टि से असाधारण है, क्योंकि इस बार कुंभ का दर्पण एक असहज छवि दिखा रहा है—जहाँ साधना सत्ता से टकरा रही है और धर्म अपने ही संरक्षकों से प्रश्न पूछ रहा है।

प्रश्न यह नहीं कि कुंभ भव्य होगा या नहीं; प्रश्न यह है कि क्या कुंभ 2026 हिंदू धर्माचार्य समाज को आत्मावलोकन की ओर ले जाएगा या आत्मप्रचार के दलदल में और गहराई से धकेलेगा। क्या धर्म सत्ता का अनुचर बनेगा या सत्ता को धर्म के अनुशासन के आगे नतमस्तक होना पड़ेगा—यही इस कुंभ की केंद्रीय कसौटी है।

आज कुंभ के अखाड़ों में केवल शास्त्रार्थ नहीं, बल्कि 'स्थानार्थ' भी चल रहा है। परंपरागत संत समाज और नव-उदित धर्माचार्य वर्ग के बीच टकराव किसी व्यक्तिगत अहं का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह धर्म की दिशा और परिभाषा पर अधिकार की लड़ाई है। यह संघर्ष इस बात का संकेत है कि धर्म अब साधना की नहीं, मंच और प्रभाव की भाषा में बोलने लगा है।

एक ओर वे संत हैं, जिनके लिए कुंभ तप, त्याग और मौन की साधना है। दूसरी ओर वे धर्माचार्य हैं, जिनके लिए कुंभ मीडिया कवरेज, मंचीय उपस्थिति और राजनीतिक पहुँच का उत्सव बन चुका है। भगवा वस्त्र अब वैराग्य का नहीं, ब्रांड पहचान का प्रतीक बनते जा रहे हैं। आश्रम गुरुकुल नहीं, बल्कि कॉर्पोरेट संरचनाओं जैसे दिखाई देते हैं।

यह अंतर्द्वंद्व केवल वैचारिक नहीं, बल्कि संरचनात्मक भी है। अखाड़ा परिषदें, धर्म संसदें और महामंडलेश्वर पद—अब आध्यात्मिक योग्यता से अधिक, राजनीतिक और रणनीतिक समीकरणों से तय होते प्रतीत होते हैं। जिस कुंभ में कभी 'निष्काम कर्म' का उद्घोष था, वहाँ अब 'प्रभाव और प्रभुत्व' की होड़ साफ दिखाई देती है।

इसका सबसे गहरा प्रभाव आम श्रद्धालु पर पड़ रहा है। जब गुरु ही गुरु से संघर्षरत हो, तो शिष्य किसे माने? आस्था के इस बढ़ते बाज़ार में साधारण भक्त एक उपभोक्ता में बदलता जा रहा है—जहाँ मोक्ष नहीं, प्रबंधन पैकेज बिक रहे हैं। श्रद्धालु भीड़ बन गया है—सत्ता के लिए उपयोगी और धर्माचार्यों के लिए लाभकारी, पर स्वयं के लिए दिशाहीन।

इतिहास साक्षी है कि जब-जब धर्माचार्य आत्मसंघर्ष में उलझे हैं, तब-तब समाज दिशाहीन हुआ है। आज हिंदू समाज फिर उसी मोड़ पर खड़ा है। कुंभ का वास्तविक स्नान गंगा में नहीं, अंतरात्मा में होना चाहिए। यदि यह नहीं हुआ, तो प्रयागराज 2026 भव्य आयोजन होकर भी आध्यात्मिक रूप से एक चूक बन जाएगा।

कुंभ केवल संगम नहीं है—वह समन्वय की परीक्षा है। और इस परीक्षा में सबसे पहले धर्माचार्यों को स्वयं को उत्तीर्ण करना होगा। मनुस्मृति का उद्घोष—"धर्मो रक्षति रक्षितः"—आज पहले से अधिक प्रासंगिक है। प्रश्न यह है कि क्या धर्म अपने रक्षकों से सुरक्षित है?

इतिहास में कुंभ सदैव आत्मशुद्धि और वैराग्य का प्रतीक रहा है, किंतु प्रयागराज 2026 का कुंभ एक असहज प्रश्न खड़ा करता है—क्या धर्म सत्ता को मार्ग दिखा रहा है या सत्ता धर्म को दिशा दे रही है? यह आलेख अखाड़ा राजनीति, महामंडलेश्वर पदों के बदलते अर्थ और धर्माचार्यों की राजनीतिक भूमिका का विश्लेषण करते हुए बताता है कि कैसे शास्त्र की जगह रणनीति और साधना की जगह प्रभाव ने ले ली है।

आज कुंभ के अखाड़ों, शिविरों और मंचों पर जो दृश्य उभर रहा है, वह व्यक्ति बनाम व्यक्ति का नहीं, बल्कि शास्त्र बनाम प्रदर्शन का संघर्ष है। साधना बनाम राजनीतिक महत्वाकांक्षा का द्वंद्व स्पष्ट

दिखाई देता है। शास्त्र कहते हैं—"राजानं धर्मेण पालयेत्"—राजा को धर्म से नियंत्रित होना चाहिए, धर्म राजा से नहीं। किंतु प्रयागराज 2026 में दृश्य उलटा प्रतीत होता है।

धर्माचार्य सत्ता के संरक्षण में सुरक्षित दिखाई देते हैं और सत्ता धर्माचार्यों की आड़ में वैधता खोजती नजर आती है। कई मंचों पर धर्मोपदेश की जगह राजनीतिक संकेत दिए जा रहे हैं। धर्माचार्य धीरे-धीरे नीति-समर्थक और भीड़-प्रबंधनकर्ता में बदलते जा रहे हैं। यह

आज कुंभ में टकराव साधु बनाम साधु का नहीं, बल्कि शास्त्र बनाम प्रदर्शन का है। यह लेख दिखाता है कि कैसे ब्रांडेड आश्रम, मीडिया-केंद्रित प्रवचन और राजनीतिक संरक्षण ने धर्म को अनुभव से इवेंट में बदल दिया है। इस परिवर्तन का सबसे गहरा प्रभाव आम श्रद्धालु पर पड़ता है, जो आस्था के बाज़ार में धीरे-धीरे उपभोक्ता में बदल रहा है—दिशाहीन, भ्रमित और नेतृत्वविहीन।

धर्म का राजनीतिकरण नहीं, बल्कि धर्म की अधीनता है।

अखाड़ों की स्थापना का उद्देश्य था—तप, वैराग्य और शास्त्र की रक्षा। किंतु 2026 के कुंभ में अखाड़े शक्ति-संतुलन के केंद्र बनते दिखाई दे रहे हैं। महाभारत की चेतावनी स्मरणीय है—"अधर्मेणैधते तावत्"—अधर्म कुछ समय फलता है, पर अंततः विनाशकारी होता है।

महामंडलेश्वर पद कई स्थानों पर अब साधना की नहीं, राजनीतिक स्वीकार्यता की मोहर बनता जा रहा है। यह आध्यात्मिक उत्तरदायित्व नहीं, बल्कि धार्मिक सत्ता का लाइसेंस प्रतीत होता है। ब्रांडेड आश्रम, प्रायोजित प्रवचन और डिजिटल प्रचार—धर्म अब अनुभव नहीं, इवेंट मैनेजमेंट बनता जा रहा है।

उपनिषद् का वाक्य—"सत्यं वद, धर्मं चर"—आज सत्ता के लिए असुविधाजनक हो गया है। राजनीति हमेशा धर्म का उपयोग करती रही है, किंतु पहली बार धर्माचार्य स्वयं राजनीति की भाषा बोलते दिख रहे हैं। जब धर्माचार्य सत्ता का पक्षकार बनता है, तो वह धर्म का प्रतिनिधि नहीं, राजनीतिक एजेंट बन जाता है।

ऋग्वेद का आह्वान—"संगच्छध्वं संवदध्वं"—समन्वय का है, समर्पण का नहीं। कुंभ 2026 यह तय करेगा कि हिंदू धर्माचार्य शास्त्र के अधीन रहेंगे या सत्ता-सुख की राजनीति में उलझ जाएंगे।

कुंभ केवल स्नान नहीं है। वह धर्माचार्यों की वैचारिक अग्निपरीक्षा है—या तो धर्म सत्ता को मार्ग दिखाएगा, या सत्ता धर्म को दिशा देगी। प्रयागराज कुंभ 2026 को इतिहास एक आयोजन के रूप में नहीं, बल्कि निर्णय-स्थल के रूप में याद रखेगा।

लेखक चंद्र कुमार श्रीवास्तव मीडिया मैप के प्रबन्ध सम्पादक है।

धर्म–राजनीति का खतरनाक गठजोड़: सभ्यता के विरुद्ध अपराध

-चंद्र कुमार एडवोकेट

धर्म और राजनीति का संबंध नया नहीं है, लेकिन जब यह संबंध नीति और नैतिकता से हटकर सत्ता और अपराध के गठजोड़ में बदल जाता है, तब वह केवल राजनीतिक संकट नहीं रहता—वह सभ्यता का संकट बन जाता है।

धर्म का मूल उद्देश्य आत्मसंयम, करुणा और नैतिक अनुशासन है, जबकि राजनीति का घोषित लक्ष्य लोक-कल्याण। किंतु जब दोनों मिलकर भय, भीड़ और स्वार्थ की त्रयी रचते हैं, तब जो जन्म लेता है वह न धर्म होता है, न राजनीति—बल्कि एक घातक आपराधिक रसायन होता है। यह रसायन प्रत्यक्ष अपराध नहीं करता; यह आस्था के नाम पर अपराध को वैध ठहराता है।

इतिहास गवाह है कि जब-जब धर्म सत्ता की गोद में बैठा है, उसने अन्याय पर मौन साधा है। और जब-जब राजनीति ने धर्म को ढाल बनाया है, तब-तब उसने कानून, विवेक और अंततः मानवता को कुचला है। आज संकट यह नहीं कि अपराधी राजनीति में हैं, बल्कि यह है कि अपराध को धर्मसम्मत बताया जाने लगा है।

भीड़ को उकसाना 'धर्मरक्षा', घृणा फैलाना 'संस्कृति संरक्षण' और असहमति को 'अधर्म' कहा जाने लगा है। यहीं लोकतंत्र समाप्त होकर भीड़तंत्र शुरू होता है। सत्ता के अपराधों पर धर्माचार्यों का मौन तटस्थता नहीं, बल्कि सहभागिता है; और धर्म के नाम पर अपराध से बच निकलने वाला राजनेता केवल दोषी नहीं, संरक्षित अपराधी है।

इस गठजोड़ की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि इसमें धर्म की आत्मा सबसे पहले मरती है। मंदिर और मंच बने रहते हैं, पर भीतर से धर्म खोखला हो जाता है—वह प्रश्न नहीं करता, केवल आदेश दोहराता है।

समाज को स्पष्ट समझना होगा: जो धर्म अपराध को ढकता है, वह धर्म नहीं—षड्यंत्र है। और जो राजनीति धर्म का उपयोग करती है, वह राजनीति नहीं—सत्ता की भूख है।

धर्म को बचाना है तो उसे राजनीति की छाया से बाहर लाना होगा, और राजनीति को बचाना है तो उसे धर्म के मुखौटे उतारने होंगे—अन्यथा इस विस्फोट के बाद मलबे में न्याय नहीं मिलेगा।

होली के रंगों से उठता है ,सौहार्द का सूरज

मीडियम अप न्यूज ब्यूरो

"रंग, रस और भारतीय आत्मा का उत्सव है "होली"

हमारा देश उत्सवों की पावन भूमि है, और हर उत्सव का अध्यात्मिकता से गहरा जुड़ाव है , साथ ही साथ जिसका खगोल शास्त्रीय और वैज्ञानिक महत्व भी है। हमारे ऋषियों मुनियों ने जिस भी त्योहार उत्सव की संरचना किया है उसके बहुत गहरे महत्व हैं और ये ग्रह नक्षत्रों से संचालित होते हैं यदि इन त्योहारों पर्वो पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि अंग्रेजी कैलेंडर की तारीखें तो बदल जाती हैं किन्तु हिंदी कैलेंडर जस की तस रहती है। यहां पर यह समझना जरूरी है कि हिंदी कैलेंडर में क्या हम जानते हैं कि हर महीने में पूर्णिमा और अमावस्या होती है लेकिन सिर्फ यहां हम दो ही त्यौहार का सिंहावलोकन करेंगे एक सबसे बड़ा त्यौहार दीपावली का है आप देखेंगे की दीपावली हमेशा अमावस्या को ही होती है और होली हमेशा पूर्णिमा को ही होती है ऐसा क्या है की हर महीने में अमावस्या और पूर्णिमा होती है किंतु जिस अमावस्या को दीपावली होती है या जिस पूर्णिमा को होली होती है उसका वैज्ञानिक महत्व या खगोल शास्त्रीय महत्व क्या है? यहां यह समझना महत्वपूर्ण है कि दीपावली को जो अमावस्या होती है उसको हम महानिशा की रात्रि कहते हैं अर्थात घनघोर अंधेरा तो हमारे ऋषि मुनियों ने कहा दीपक जलाओ और उजाला करो और पूर्णिमा तो स्वयं उजाला है तो हमारे ऋषियों मुनियों ने कहा की इस उजियारी रात्रि में सिर्फ एक जगह एकत्रित होकर होलिका दहन करो और दिन में रस और रंग में मदमस्त रहो। जिसका सीधा अर्थ ग्रह नक्षत्र से है और आप देखेंगे कि यह त्यौहार लगभग 5 दिनों का होता है दो दिन आगे और 2 दिन पीछे । फिलहाल अभी त्यौहार है ,होली" का , तो यहां हम सिर्फ होली के महत्व को समझने का प्रयास करेंगे।

आखिर पूर्णिमा तो हर महीने आती है और हर पूर्णिमा को कोई न कोई त्योहार या उत्सव भी मनाया जाता है किंतु होली वाली पूर्णिमा इसलिए महत्वपूर्ण है की चंद्रमा पृथ्वी के ज्यादा नजदीक होता है और अनेक खगोलीय घटनाएं होती हैं।प्रकृति की जो सबसे बड़ी घटना या दुर्घटना है, वह यह है कि हम यानी मनुष्य चार पैर से दो पैर पर आ गये ।यानी हम जानते हैं कि हमारे पूर्वज चार पैर वाले यानी बंदर, बनमानुष होते थे और जब हम चार पैर से दो पैर पर खड़े हुए तो हमारे मस्तिष्क का संबंध सीधा ब्रह्मांड से जुड़ गया और वैज्ञानिकों ने यह पाया है की हमारा जो मस्तिष्क है उसका एक-एक स्थान नवग्रह से जुड़ गया जिससे हम संचालित हो रहे हैं । हम पाएंगे कि जिस पूर्णिमा को होली होती है हमारे मस्तिष्क में अनेकों प्रकार के तनाव या विकार गहरे उत्पन्न होते हैं, जिसे हम महसूस नहीं कर पाते, लेकिन उसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, आप के पास कोई वैज्ञानिक यंत्र तो नहीं है कि आप इसका परीक्षण कर सकें किन्तु इसका लिटमस टेस्ट अवश्य कर सकते हैं आप पाएंगे कि होली के एक दिन पहले और एक दिन बाद वह चाहे प्रिंट मीडिया हो या डिजिटल मीडिया, वह हमेशा बैड न्यूज़ से भरे होते है, अनेक प्रकार की दुर्घटनाए,अग्नि कांड,,लड़ाई झगड़ा, मारपीट , हत्या, आत्म हत्या, बलात्कार आदि सुनने व पढ़ने को मिलता है।लेकिन हमारे ऋषियों मुनियों ने इसे बहुत पहले महसूस कर लिया था जब समाचार का कोई संसाधन नहीं था किन्तु लोक कल्याण की भावना से इसे आध्यात्मिकता से जोड़ दिया ताकि हमारा मन मस्तिष्क खुशियों की ओर डायवर्ट हो सके और मानसिक नियंत्रण तथा सामाजिक नियंत्रण सही ढंग से होता रहे।

काशी की होली : रंग, राग-विराग और रूह का महोत्सव

"होली खेलें मसाने में"

काशी की होली केवल एक पर्व नहीं, बल्कि एक जीवित संस्कृति है—जहाँ रंगों से अधिक मन भी भीगते हैं। यह वह शहर है जहाँ मृत्यु भी उत्सव है, तो फिर होली क्यों साधारण हो? यहाँ होली फागुन की हवा के साथ नहीं, सदियों की परंपरा के साथ आती है।

सुबह जैसे ही सूरज गंगा के ऊपर सुनहरी किरणें बिखेरता है, मणिकर्णिका घाट, जहां चिंता की राख (भस्म)से भी होली खेली जाती है तभी यह गीत भी बना बाबा भोलेनाथ तो सबके है यानी वैरागी भी भस्म होली खेलते हैं।

दशाश्वमेध घाट पर रंगों की पहली परछाईं दिखाई देती है। गंगा की लहरों के साथ उड़ता गुलाल मानो आकाश को भी रंग देता है। नावों पर बैठे लोग, ढोल की थाप,

"हर-हर महादेव" के उद्घोष—सब मिलकर एक अलौकिक दृश्य रचते हैं।

काशी की गलियाँ इन दिनों किसी चित्रकार के कैनवास जैसी लगती हैं। चौक, ठठेरी बाजार, मैदागिन—हर ओर अबीर की धुंध और हँसी की गूंज। यहाँ होली में कोई पराया नहीं रहता। अजनबी भी रंग लगाकर अपना बन जाता है। यही बनारस का स्वभाव है—मुक्त, मस्त और मगन।

काशी विश्वनाथ मंदिर में इस दिन फूलों की होली खेली जाती है। भक्ति और उल्लास का ऐसा संगम विरला है। कहीं भजन गूंजते हैं, तो कहीं बनारस घराने की ठुमरी—"आज बिरज में होली रे रसिया..."—संगीत की यह धारा वातावरण को और भी रसमय बना देती है।

बनारसी होली का एक रंग उसका फक्कड़पन भी है। ठंडाई में घुली भांग, गरमा-गरम कचौड़ी और जलेबी—इन सबके बीच ठहाकों का सिलसिला चलता रहता है। यहाँ होली केवल रंग लगाने का उत्सव नहीं, बल्कि जीवन को खुले मन से जीने का अवसर है।

विश्व प्रसिद्ध विश्वनाथ की नगरी काशीपुराधिपति की होली हमें सिखाती है कि जीवन क्षणभंगुर है, इसलिए हर क्षण को उत्सव की तरह जियो। रंग फीके पड़ सकते हैं, पर बनारस की होली की स्मृति कभी फीकी नहीं पड़ती।

इन उत्सवों में 'होली' केवल एक महत्वपूर्ण पर्व ही नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन का जीवंत प्रतीक है। यह रंगों का उत्सव है, लेकिन उससे भी अधिक यह मनुष्यता, मेल-मिलाप और सामाजिक समरसता का पर्व है। फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाने वाला यह त्योहार ऋतु परिवर्तन, प्रकृति के नवोन्मेष और मन-मस्तिष्क व हृदय के पुनर्जागरण का संदेश देता है।

पौराणिक आधार और आध्यात्मिक संकेत

होली का संबंध भक्त प्रह्लाद और अत्याचारी राजा हिरण्यकश्यप की कथा से जुड़ा है। यह कथा केवल आस्था की विजय नहीं, बल्कि अन्याय पर न्याय और अहंकार पर भक्ति की विजय का शाश्वत प्रतीक है। होलिका दहन हमें याद दिलाता है कि दुष्टता चाहे कितनी भी प्रबल क्यों न हो, अंततः सत्य की ही विजय होती है।

वृंदावन और मथुरा की होली इसका संबंध श्रीकृष्ण और राधा की लीलाओं से है। यहां होली केवल रंगों की नहीं, प्रेम और माधुर्य की अभिव्यक्ति है। ब्रज की फाग, बरसाने की लट्ठमार होली और वृंदावन की फूलों की होली, भक्ति और उल्लास का अद्भुत संगम प्रस्तुत करती हैं।

सामाजिक समरसता का संदेश

होली का सबसे बड़ा सौंदर्य यह है कि यह भेदभाव की दीवारें तोड़ देती है। जाति, वर्ग, पद और प्रतिष्ठा सब रंगों में धुल जाते हैं। लोग एक-दूसरे को गले लगाकर कहते हैं—"बुरा न मानो होली है।" यह वाक्य केवल मज़ाक नहीं, बल्कि क्षमा, पुनर्मिलन और संबंधों के नवीनीकरण का प्रतीक है।

भारतीय साहित्य में भी होली का विशेष स्थान है। सूरदास, बिहारी और रसखान ने फाग और होली के प्रसंगों को अमर काव्य रूप दिया। आधुनिक काल में भी यह पर्व सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक

जीवंतता का प्रतीक बना हुआ है।

प्रकृति और जीवन का उत्सव

"होली" वसंत के आगमन का भी उत्सव

है। खेतों में लहलहाती फसल, आम के बौर, कोयल की कूक—सब मिलकर जीवन के नवसृजन की घोषणा करते हैं। यह त्योहार हमें बताता है कि जीवन में अनेक रंगों की आवश्यकता है। एकरसता, कटुता और द्वेष को त्यागकर आनंद, प्रेम और उत्साह को अपनाना ही होली का वास्तविक संदेश है।

समकालीन संदर्भ

आज के समय में, जब समाज विभाजन, तनाव और संकीर्णताओं से जूझ रहा है, होली का संदेश और भी प्रासंगिक हो जाता है। यह पर्व हमें याद दिलाता है कि विविधता ही हमारी शक्ति है। यदि सभी रंग मिलकर सुंदर इंद्रधनुष बना सकते हैं, तो मनुष्य भी मिलकर एक सशक्त समाज का निर्माण कर सकते हैं।

यह भी आवश्यक है कि होली का उत्सव मर्यादा,पर्यावरण-संरक्षण और संवेदनशीलता के साथ मनाया जाए। जैसा कि हमारे पूर्वजो ने समझाया है, बताया है, प्राकृतिक रंगों का प्रयोग, जल-संरक्षण और पारस्परिक सम्मान—यही आधुनिक होली की पहचान होनी चाहिए।

'होली' केवल रंगों का खेल नहीं, बल्कि आत्मा का उत्सव है। यह हमें सिखाती है कि जीवन में कितनी भी कठोरता क्यों न हो, प्रेम और उल्लास के रंग उसे सुंदर बना सकते हैं।

आइए, इस होली पर हम तन को साफ करने के लिए केवल शरीर में उबटन न लगाएं बल्कि मन की मलीनता को साफ करें, एक-दूसरे को रंग न लगाएँ, बल्कि अपने मन को भी करुणा, क्षमा और सौहार्द के रंगों से रंग लें।

होली हमें जोड़ती है—मन से मन, व्यक्ति से समाज और परंपरा से भविष्य तक।

क्या महिलाओं के अधिकार और समाज में उनका स्थान गंभीर खतरे में है?

डॉ. सतीश मिश्रा

आज के इकोसिस्टम के नेताओं के कुछ बयान ध्यान देने लायक हैं। क्या वे 'महिला अधिकारों' के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं या नहीं?

इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए अधिक गहनता से विचार करने की आवश्यकता है, क्योंकि मेरी समझ से, यह महिलाओं के अधिकारों के लिए एक गंभीर चुनौती है, जो किसी की कृपा, दया या उदारता से प्राप्त नहीं हुआ है, बल्कि विशेष रूप से समाज के बड़े पैमाने पर पितृसत्तात्मक या स्पष्ट रूप से कहें तो 'पुरुष वर्चस्ववादी' होने की पृष्ठभूमि में लंबे संघर्षों के बाद प्राप्त हुआ है।

तीन बच्चों की अपील क्या सिर्फ जनसंख्या बहस है या महिलाओं की स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप? यह लेख पितृसत्तात्मक सोच और महिला अधिकारों के बीच उभरते टकराव की पड़ताल करता है।

समाज में महिलाओं की भूमिका और उनके बच्चे पैदा करने के अधिकार पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) द्वारा निर्देशित बहस का सबसे अच्छा हिस्सा पूरी तरह से एकतरफा है, जिसमें केवल पुरुष ही समाज के सदस्यों से पूछे बिना ही आदेश जारी करते या हुक्म चलाते दिखते हैं, जो आज देश की आधी से अधिक आबादी का गठन करते हैं।

देश में बहनों, माताओं और वयस्क महिला आबादी के साथ परामर्श का कोई संकेत नहीं है, जो कुल आबादी का आधे से अधिक हिस्सा है। इस पर अधिक जानकारी के लिए, आइए पहले इस मुद्दे पर वास्तव में बोले गए शब्दों पर नज़र डालें।

इस वर्ष 25 जनवरी को, आरएसएस के हिंदुत्व एजेंडे को आगे बढ़ाने के मुख्य साधन-विश्व हिंदू परिषद (वीएचपी) ने "हिंदुओं में घटती जन्म दर" पर चिंता व्यक्त की और प्रत्येक हिंदू परिवार में कम से कम तीन बच्चे पैदा करने का आह्वान किया।

प्रयागराज में कुंभ के दौरान विराट संत सम्मेलन में पड़ोसी देश बांग्लादेश में हिंदुओं पर हो रहे अत्याचारों पर चिंता व्यक्त करते हुए विहिप के केन्द्रीय महामंत्री बजंग लाल बांगड़ा ने कहा, "हिंदुओं की घटती जन्म दर के कारण देश में हिंदू आबादी में असंतुलन पैदा हो गया है। हिंदू समाज के पूज्य संतों ने प्रत्येक हिंदू परिवार में कम से कम तीन बच्चे पैदा करने का आह्वान किया है।"

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ विश्व हिन्दू परिषद के प्रयासों की सराहना करने वाले पहले व्यक्ति थे, जिससे पता चलता है कि अधिक बच्चे पैदा करने के आह्वान को आधिकारिक संरक्षण भी प्राप्त है।विहिप की यह अपील या कहें कि हिंदुओं के लिए यह एक आदेश है, जो अचानक या बिना सोचे-समझे की गई टिप्पणी नहीं है, बल्कि यह एक सोची-समझी नीति का हिस्सा है, जो संघ-भाजपा की राजनीतिक रणनीति के साथ अच्छी तरह से मेल खाती है, जिसके तहत हर मुद्दे को हिंदू-मुस्लिम द्विभाजन के रूप में भुनाया जाता है, जो आम लोगों को गुमराह करने के प्रमुख तरीकों में से एक है, क्योंकि यह हिंदुत्व के "शत्रु सिंड्रोम" हथियार के साथ फिट बैठता है।

इससे पहले आरएसएस सरसंघचालक मोहन भागवत ने पिछले साल 03 दिसंबर को दंपतियों से कम से कम तीन बच्चे पैदा करने को कहा था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि भारतीय समाज जीवित रहे।

नागपुर में 'कथले कुल (वंश) सम्मेलन' में बोलते हुए, आरएसएस प्रमुख ने इस बात पर प्रकाश डाला कि "कुटुंब" (परिवार) समाज का एक अभिन्न अंग है और हर परिवार एक महत्वपूर्ण निर्माण खंड के रूप में कार्य करता है। उन्होंने कहा कि घटती जनसंख्या वृद्धि के कारण कई भाषाएँ और संस्कृतियाँ लुप्त हो गई हैं।

भागवत ने कहा, "आबादी में गिरावट एक गंभीर चिंता का विषय है। लोकसंख्या शास्त्र (जनसांख्यिकी विज्ञान) बताता है कि जब किसी समाज की कुल प्रजनन दर

2.1 से कम हो जाती है, तो उसके विलुप्त होने का खतरा होता है। इस गिरावट के लिए जरूरी नहीं कि बाहरी खतरे हों; समाज धीरे-धीरे अपने आप ही खत्म हो सकता है।" "इस मुद्दे के कारण कई भाषाएँ और संस्कृतियाँ पहले ही लुप्त हो चुकी हैं। इसलिए, प्रजनन दर को 2.1 से ऊपर बनाए रखना आवश्यक है।"

यद्यपि भागवत ने देश की घटती जनसंख्या के बारे में बात की, लेकिन आरएसएस लगातार एक जनसंख्या नीति की वकालत करता रहा है, जिसका आधार यह विश्वास है कि हिंदू जनसंख्या अन्य समुदायों, विशेषकर मुसलमानों और ईसाइयों की तुलना में उतनी तेजी से नहीं बढ़ रही है।

अक्टूबर 2022 में अपने वार्षिक विजयादशमी संबोधन के दौरान, भागवत ने कहा कि समुदायों के बीच जनसंख्या असंतुलन भौगोलिक सीमाओं को प्रभावित कर सकता है और इसे नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने एक समावेशी जनसंख्या नियंत्रण नीति की आवश्यकता पर बल दिया जिसका सभी सामाजिक क्षेत्रों को पालन करना चाहिए।

सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) के वैचारिक स्रोत आरएसएस ने 2015 में औपचारिक रूप से एक व्यापक जनसंख्या नीति के लिए एक प्रस्ताव पारित किया था। तीन साल बाद, इसने सभी समुदायों पर लागू जनसांख्यिकीय संतुलन सुनिश्चित करने के लिए एक समान कानून की वकालत की।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अगुवाई वाली सरकार के सहयोगी आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू ने इस साल 16 जनवरी को इस मुद्दे पर लोगों से ज़्यादा बच्चे पैदा करने की अपील की। उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा कि ऐसा न करने पर किसी को स्थानीय निकाय चुनाव लड़ने से रोका जा सकता है।

यह घटना आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा उस

कानून को निरस्त करने के कुछ ही महीनों बाद हुई है, जिसके तहत दो से अधिक बच्चे वाले लोगों को पंचायत और नगरपालिका चुनाव लड़ने से रोक दिया गया था। कहा जा रहा है कि अधिक बच्चे पैदा करने के नियम को लागू करने के लिए एक प्रस्ताव पर काम चल रहा है।

जैसा कि पहले ही संक्षेप में उल्लेख किया गया है, महिलाओं से अधिक बच्चे पैदा करने का आह्वान, हरियाणा में 2015 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा शुरू किया गया महत्वपूर्ण अभियान 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' खोखला प्रतीत होता है और यह कहावत का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रतीत होता है कि "शिकार कुत्ते से करना और दौड़ खरगोश से करना"।

'बेटी बचाओ' से 'तीन बच्चे पैदा करो' तक— क्या यह नीति का विरोधाभास है? लेख बताता है कि जनसंख्या राजनीति और महिला सशक्तिकरण के दावे कैसे आमने-सामने खड़े हैं।

यह कहना न तो कोई शिष्टता है और न ही कोई रॉकेट साइंस कि एक बच्चे को जन्म देने और उसके प्रियजनों के पालन-पोषण का मुख्य भार निष्पक्ष लिंग पर होता है। जन्म से लेकर बड़े होने तक बच्चे के वयस्क होने तक, मुख्य रूप से महिलाओं पर ही इसका भार होता है। एक ओर, लैंगिक समानता का मुद्दा अभी भी एक जारी मिशन है क्योंकि कुछ कानूनी ढांचे के बावजूद इसे हासिल नहीं किया जा सका है। मीडिया में हर दिन पुरुषों द्वारा महिलाओं पर अत्याचार की कहानियाँ सामने आती रहती हैं।

कई राज्य सरकारें, खास तौर पर भाजपा की सरकारें, 'नैतिक पुलिस' के तौर पर काम कर रही हैं। जाट समुदाय में खापें हैं जो 'प्रेम' के कारण विवाह को स्वीकार नहीं करतीं और प्रेम की सार्वभौमिक भावना के खिलाफ़ फरमान जारी करती हैं जो जाति, समुदाय और नस्ल की बाधाओं को स्वीकार नहीं करती।

लव जिहाद एक और हथियार है जिसका इस्तेमाल वयस्क लड़कियों को निजी संपत्ति के रूप में करने के लिए किया गया है। समान नागरिक संहिता (यूसीसी) बनाने की प्रक्रिया में, राज्य के अधिकार क्षेत्र को बेडरूम तक बढ़ा दिया गया है। लिव इन रिलेशनशिप को राज्य द्वारा स्वयं गंभीर जांच के अधीन किया जा रहा है जो निजता के अधिकार का घोर उल्लंघन है।

एक ओर, मोदी सरकार ने संसद और राज्य विधानसभाओं के दोनों सदनों में एक तिहाई आरक्षण प्रदान करने वाला अधिनियम पारित किया है, वहीं दूसरी ओर आरएसएस महिलाओं को पीछे धकेल रहा है, जिससे समाज और राष्ट्र निर्माण में उनकी प्रतिष्ठित भूमिका खतरे में पड़ रही है।

लेखक वरिष्ठ पत्रकार, राजनैतिक विश्लेषक एवं मीडिया मैप के संयुक्त संपादक हैं।

शहीदों का भारत: क्या हम उनके सपनों के काबिल हैं?

मीडियम अप न्यूज ब्यूरो

मार्च 23 1931 — यह सिर्फ एक तारीख नहीं, बल्कि भारत की आत्मा पर अंकित वह दिन है जब तीन युवाओं ने हंसते-हंसते मौत को गले लगाकर आने वाली पीढ़ियों को जीने का अधिकार दिया। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को अंग्रेजी हुकूमत ने फांसी दी, लेकिन उनके विचारों को नहीं मार सकी।

शाम 7:30 बजे, लाहौर सेंट्रल जेल की दीवारों के भीतर जो हुआ, वह सिर्फ एक कानूनी सज़ा नहीं थी — वह एक साम्राज्य की कायरता थी। 24 मार्च की तय तारीख से पहले ही 23 मार्च की शाम गुपचुप फांसी देना इस बात का प्रमाण था कि अंग्रेज उनकी लोकप्रियता और जनआक्रोश से डर गए थे।

फांसी के बाद उनके शवों को चोरी-छिपे सतलुज किनारे जलाने की कोशिश की गई, लेकिन जनता ने शहीदों को उनका सम्मान दिलाया। यह सिर्फ अंतिम संस्कार नहीं था — यह जनक्रांति की घोषणा थी।

वे 20-23 वर्ष के थे। आज की भाषा में कहें तो वे "यंग इंडिया" थे। लेकिन फर्क यह है कि उन्होंने अपने समय की सबसे बड़ी अन्यायपूर्ण सत्ता को चुनौती दी। जलियांवाला बाग ने उनके भीतर जो आग लगाई, वह व्यक्तिगत प्रतिशोध नहीं थी, बल्कि साम्राज्यवाद के खिलाफ वैचारिक विद्रोह था।

सांडर्स की हत्या और असेम्बली में बम फेंकना उनके संघर्ष का हिस्सा था, लेकिन उससे भी बड़ा उनका बौद्धिक संघर्ष था। "इंकलाब जिंदाबाद" उनके लिए सिर्फ नारा नहीं था; वह सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता और वैचारिक स्वतंत्रता की पुकार था। उन्होंने स्पष्ट कहा था — क्रांति का अर्थ व्यवस्था में आमूल परिवर्तन है।

आज जब हम 23 मार्च को "शहीद दिवस" मनाते हैं, तो एक असहज सवाल सामने खड़ा होता है —

क्या यह वही भारत है जिसके लिए उन्होंने फांसी का फंदा चूमा था?

आज भारत औपनिवेशिक शासन से मुक्त है, लेकिन क्या वह शोषण से मुक्त है?

आज हमारे पास लोकतंत्र है, लेकिन क्या लोकतांत्रिक चेतना है?

आज हमारे पास संविधान है, लेकिन क्या उसके मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता है?

देश दो खतरनाक दिशाओं में बढ़ रहा है — आर्थिक असमानता और सामाजिक ध्रुवीकरण।

सरकारी संपत्तियों का निजीकरण विकास का नाम लेकर किया जा रहा है। रेलवे, एयरपोर्ट, बैंक, प्राकृतिक संसाधन — सब कुछ बाज़ार के हवाले हो रहा है। सवाल यह नहीं कि निजीकरण सही है या गलत; सवाल यह है कि क्या आम नागरिक की भागीदारी और अधिकार सुरक्षित हैं? भगत सिंह का भारत पूंजी के वर्चस्व वाला नहीं, बल्कि समान अवसरों वाला भारत था। दूसरी ओर, समाज में नफरत का जहर घुल रहा है। धर्म और जाति के नाम पर विभाजन गहराता जा रहा है। अंग्रेजों की "डिवाइड एंड रूल" नीति इतिहास की किताबों में पढ़ाई जाती है, लेकिन उसका मनोविज्ञान आज भी जीवित है। फर्क सिर्फ इतना है कि अब शासक विदेशी नहीं, अपने हैं।

सबसे चिंता की बात है — युवा।

23 साल की उम्र में जहां भगत सिंह फांसी चढ़ गए, आज का युवा डिजिटल भीड़ का हिस्सा बनता जा रहा है। सोशल मीडिया सूचना का माध्यम कम और प्रोपेगेंडा का हथियार अधिक बनता जा रहा है। फेक न्यूज़ और ट्रोल संस्कृति विचारशील संवाद को निगल रही है।

आज की लड़ाई बंदूक की नहीं, विचारों की है।

आज की क्रांति खून से नहीं, चेतना से होगी।

लोकतंत्र केवल वोट डालने का अधिकार नहीं है। सवाल पूछना, असहमति जताना और सत्ता को जवाबदेह बनाना लोकतंत्र की आत्मा है। अगर असहमति को देशद्रोह कह दिया जाए, तो यह लोकतंत्र नहीं, भय का तंत्र बन जाता है। क्रांति का अर्थ सरकार बदलना नहीं, सोच बदलना है।

जब हम जाति और धर्म से ऊपर उठकर सोचेंगे,

जब हम नफरत के बजाय संवाद चुनेंगे,

जब हम अंधभक्ति के बजाय विवेक अपनाएंगे —

तभी शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

आज जरूरत है कि हम शहीदों को केवल पोस्टर और भाषण तक सीमित न रखें। उनके विचारों को पढ़ें। समझें कि उन्होंने जिस भारत का सपना देखा था, वह समावेशी, न्यायपूर्ण और समानता पर आधारित भारत था।

हमें तय करना होगा —

हम शहीदों के नाम पर राजनीति करेंगे या उनके सपनों को साकार करेंगे?

अब क्या करना होगा?

- नफरत के बाजार में खरीदार मत बनो।
- फेक न्यूज़ के खिलाफ जागरूक बनो।
- संविधान और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करो।
- बेरोजगारी, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे असली मुद्दों पर आवाज़ उठाओ।
- जाति और धर्म से ऊपर उठकर भारतीय बनो।

अंत में सिर्फ एक प्रश्न —

अगर आज भगत सिंह संसद की कार्यवाही देख रहे होते, तो क्या वे मुस्कुराते या चिंतित होते?

यूजीसी निर्देश और उच्च शिक्षा का विवाद: तथ्य, आशंकाएँ और असली सवाल

डॉ अनुभव माथुर

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) से जुड़ा ताज़ा निर्देश इन दिनों देशभर में बहस का केंद्र बना हुआ है। इसे लेकर समाज, शिक्षाविदों और राजनीतिक हलकों में तीखी और परस्पर विरोधी राय

> ***यूजीसी का नया निर्देश शिक्षा सुधार से आगे बढ़कर सामाजिक-राजनीतिक बहस बन गया है। समर्थक इसे समावेशन का ज़रूरी कदम मानते हैं, जबकि आलोचक इसे ध्रुवीकरण और अस्थिरता बढ़ाने वाला बताते हैं।***

सामने आ रही हैं। एक पक्ष का मानना है कि यह कदम उच्च शिक्षा में न्याय और समानता की दिशा में आवश्यक हस्तक्षेप है, जबकि दूसरा पक्ष इसे सामाजिक ध्रुवीकरण बढ़ाने वाला और संभावित रूप से अस्थिरता पैदा करने वाला मान रहा है। स्पष्ट है कि यह मुद्दा केवल शिक्षा नीति तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि इसके सामाजिक और राजनीतिक निहितार्थ भी गहरे हैं।

सरकारी पक्ष का तर्क है कि उच्च शिक्षा में ऐतिहासिक रूप से पिछड़े और वंचित वर्गों की भागीदारी अपेक्षा से कम रही है। सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ, सीमित संसाधन और शिक्षा का बढ़ता निजीकरण इस असमानता को और गहरा करते रहे हैं। बीते दशकों में सरकारी शिक्षा बजट में कटौती और निजी संस्थानों के विस्तार ने शिक्षा को महँगा बना दिया है, जिससे आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आगे बढ़ना और कठिन हो गया है। ऐसे में यूजीसी का हस्तक्षेप शिक्षा व्यवस्था को अधिक समावेशी और लोकतांत्रिक बनाने का प्रयास बताया जा रहा है।

हालाँकि आलोचक आँकड़ों के आधार पर एक अलग तस्वीर पेश करते हैं। देश में आरक्षण व्यवस्था को सात दशकों से अधिक समय हो चुका है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग मिलकर आबादी का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा बनाते हैं। आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार, उच्च शिक्षा में इन वर्गों की भागीदारी लगभग 60 प्रतिशत के आसपास है। यह अनुपात जनसंख्या के अनुपात से कम ज़रूर है, लेकिन इसे पूरी तरह बहिष्करण भी नहीं कहा जा सकता। इसी तरह, केंद्रीय विश्वविद्यालयों में छात्र आत्महत्याओं के मामलों में भी सभी सामाजिक वर्गों की मौजूदगी देखी जाती है।

इसी बिंदु पर विवाद गहराता है। समर्थकों का कहना है कि आत्महत्याओं के पीछे सामाजिक अपमान, "योग्यता पर सवाल" और संस्थागत भेदभाव की भूमिका को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। कई

> ***विवाद का केंद्र यह है कि क्या उच्च शिक्षा में भेदभाव ही आत्महत्याओं का मुख्य कारण है, या फिर प्रतिस्पर्धा, मानसिक दबाव और निजीकरण जैसी गहरी संरचनात्मक समस्याएँ ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं।***

मामलों में छात्रों को यह एहसास कराया जाता है कि वे किसी विशेष पृष्ठभूमि के कारण वहाँ "फिट" नहीं बैठते। यह मानसिक दबाव धीरे-धीरे अवसाद में बदल जाता है और कभी-कभी त्रासद अंत तक पहुँच जाता है।

वहीं, आलोचकों का तर्क है कि आत्महत्या जैसी जटिल समस्या को केवल जातीय भेदभाव से जोड़ना वास्तविक कारणों को ओझल करता है। उच्च प्रतिस्पर्धा वाले शैक्षणिक माहौल, परीक्षा-केंद्रित शिक्षा, कोचिंग संस्कृति, पारिवारिक अपेक्षाएँ और भविष्य की अनिश्चितता—ये सभी मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर दबाव डालते हैं। तकनीकी और पेशेवर संस्थानों में यह दबाव और भी

अधिक होता है। ऐसे में समाधान के बजाय यदि पूरा विमर्श केवल जाति के इर्द-गिर्द सिमट जाए, तो समस्या का मूल कारण अनछुआ रह सकता है।

यूजीसी के नए दिशा-निर्देशों पर एक और बड़ी आपत्ति संभावित दुरुपयोग को लेकर है। आलोचकों का कहना है कि गुमनाम शिकायतों और कठोर प्रक्रियाओं से भय का माहौल बन सकता है, जिसमें शिक्षक और संस्थान पहले से ही संदेह के घेरे में आ जाएँगे। आशंका यह भी जताई जा रही है कि निजी विवादों या संस्थागत राजनीति में इन प्रावधानों का इस्तेमाल हथियार की तरह किया जा सकता है। महिलाओं की सुरक्षा से जुड़े कुछ कानूनों पर पहले हुई दुरुपयोग की बहसों का उदाहरण देते हुए इस डर को बल दिया जा रहा है।

दूसरी ओर, समर्थक इस आशंका को अतिरंजित मानते हैं। उनका कहना है कि किसी भी कानून या व्यवस्था का गलत इस्तेमाल हो सकता है, लेकिन इस डर से सुधारात्मक कदम न उठाना समाधान नहीं है। उनका तर्क है कि यदि संस्थानों में पहले से ही पारदर्शी शिकायत निवारण प्रणाली और संवेदनशील काउंसलिंग व्यवस्था होती, तो शायद ऐसे कड़े निर्देशों की ज़रूरत ही न पड़ती।

आलोचक संभावित दुरुपयोग और भय के माहौल की चेतावनी देते हैं, वहीं समर्थकों का कहना है कि पारदर्शी और संवेदनशील व्यवस्था होती तो ऐसे कड़े निर्देशों की ज़रूरत ही न पड़ती।

इस पूरे विवाद के बीच एक बुनियादी प्रश्न बार-बार उभरता है—क्या हम शिक्षा के वास्तविक संकट को पहचान पा रहे हैं? उच्च शिक्षा का तीव्र निजीकरण, अत्यधिक फीस, डिग्रियों का बढ़ता व्यावसायीकरण और रोज़गार से कटता हुआ पाठ्यक्रम शायद आज की सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं। निजी विश्वविद्यालयों में एक सेमेस्टर की फीस लाखों रुपये तक पहुँच चुकी है, जो औसत नौकरीपेशा परिवार की पहुँच से बाहर है। इसके बावजूद शैक्षणिक गुणवत्ता और रोज़गार की गारंटी संदिग्ध बनी हुई है।

सरकारी विश्वविद्यालय, जो कभी कम लागत में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का आधार थे, आज संसाधनों की कमी से जूझ रहे हैं। चार साल की स्नातक व्यवस्था ने छात्रों और परिवारों पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ डाला है, जबकि रोज़गार के अवसर उसी अनुपात में नहीं बढ़े। इस पृष्ठभूमि में केवल नियामक कमेटियाँ बनाकर यह मान लेना कि भेदभाव और आत्महत्याओं की समस्या हल हो जाएगी, शायद एक सरलीकृत सोच है।

अंततः यह स्पष्ट है कि यूजीसी से जुड़ा यह निर्णय शिक्षा से अधिक राजनीति के दायरे में खिंचता दिखाई दे रहा है। ज़रूरत इस बात की है कि सरकार और नियामक संस्थाएँ विरोध और आशंकाओं को गंभीरता से लें, पारदर्शी संवाद करें और ऐसे समाधान तलाशें जो न केवल भेदभाव को रोकें, बल्कि शिक्षा को सुलभ, मानवीय और तनाव-मुक्त भी बनाएं। तभी यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि सुधार समाज को जोड़ने का काम करें, न कि नई दरारें पैदा करें।

संभ्रांतवादी वर्ग का आक्रोश

हाल के दिनों में सवर्ण तबके के एक हिस्से में दिखाई दे रहा आक्रोश कई सवाल खड़े करता है। एक चर्चित महिला टीवी एंकर ने सवर्णों से अपील की कि इस देश में अब कुछ नहीं बचा, इसलिए उन्हें विदेश में बस जाना चाहिए। वहीं एक वकील सोशल मीडिया पर यह मांग करते दिखे कि सवर्णों के लिए देश के एक हिस्से को अलग कर इज़रायल जैसा राष्ट्र बना दिया जाए। सोशल मीडिया पर चर्चित एक 'श्रीवास्तव युगल' ने तो जाति उन्मूलन का समाधान ही सरनेम हटाने में खोज लिया—जो सवर्ण दंभ की हास्यास्पद अभिव्यक्ति है।

विडंबना यह है कि यही लोग कल तक हिंदू राष्ट्र के सबसे मुखर पैरोकार और प्रधानमंत्री मोदी के अंध समर्थक थे। आज वही मोदी उन्हें 'तेली' दिखाई देने लगे हैं और सोशल मीडिया पर अपमानजनक संबोधन आम हो गए हैं। यह आक्रोश किसी वास्तविक अन्याय से नहीं, बल्कि यूजीसी की नई गाइडलाइंस के तहत 'अन्याय की आशंका' से उपजा है—जबकि विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के शीर्ष प्रशासनिक पदों पर आज भी 90 प्रतिशत से अधिक सवर्ण ही काबिज़ हैं।

प्रश्न यह है कि जिन्हें अन्याय की आशंका सताती है, वे वास्तविक अन्याय पर मौन क्यों रहते हैं? दलित दूल्हे को घोड़े से उतारना, आदिवासी पर अत्याचार, या जातिसूचक गालियाँ—ये सब उन्हें सहज क्यों लगती हैं? अक्षरधाम मामले में वर्षों जेल में बंद निर्दोष मुस्लिम युवकों की रिहाई, या बिना चार्जशीट के वर्षों से कैद उमर ख़ालिद—ये अन्याय उनकी संवेदना को क्यों नहीं झकझोरते?

यह पूरा प्रकरण बताता है कि तथाकथित राष्ट्रवाद की बुनियाद में सवर्ण विशेषाधिकार की रक्षा छिपी है। डॉ. आंबेडकर का कथन आज भी प्रासंगिक है—जब तक जाति है, तब तक भारत सच्चा राष्ट्र नहीं बन सकता। किसी कानून में सुधार संभव है, पर जातिगत श्रेष्ठता का दंभ छोड़ना ही मनुष्य बनने की असली कसौटी है।

भारत और कनाडा के बीच बड़े व्यापारिक समझौते की पहल

प्रभजोत सिंह

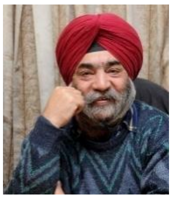

मार्च में कनाडा के प्रधानमंत्री मार्क कार्नी के संभावित भारत दौरे के साथ ही भारत-कनाडा संबंधों में एक महत्वपूर्ण मोड़ आने की संभावना जताई जा रही है। इस यात्रा के दौरान 2.8 अरब अमेरिकी डॉलर के यूरेनियम आपूर्ति समझौते पर हस्ताक्षर होने की प्रबल संभावना है। यदि यह समझौता संपन्न होता है, तो कनाडा की कैमीको कॉरपोरेशन अगले दस वर्षों तक भारत को यूरेनियम की आपूर्ति करेगी। यह करार दोनों देशों के बीच व्यापक परमाणु सहयोग का अहम हिस्सा होगा।

कनाडाई मीडिया में हाल के महीनों में भारत के साथ संबंधों में सुधार को लेकर सकारात्मक संकेत लगातार सामने आ रहे हैं। हालांकि भारत की इच्छा थी कि मार्क कार्नी फरवरी के मध्य नई दिल्ली में आयोजित एआई शिखर सम्मेलन के दौरान भारत आएँ, लेकिन अब संभावना जताई जा रही है कि वह मार्च में ऑस्ट्रेलिया यात्रा से पहले या बाद में भारत का दौरा कर सकते हैं।

प्रधानमंत्री के रूप में यह मार्क कार्नी की पहली भारत यात्रा होगी। इसे उन व्यापक व्यापार वार्ताओं को फिर से शुरू करने के प्रयास के रूप में देखा जा रहा है, जो दोनों देशों के बीच 2023 में आए गंभीर राजनयिक तनाव के बाद ठप हो गई थीं। उस वर्ष भारत-कनाडा संबंध अपने न्यूनतम स्तर पर तब पहुँच गए थे, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो ने जून 2023 में ब्रिटिश कोलंबिया के सरे शहर में एक कनाडाई सिख की हत्या में भारत की भूमिका का सार्वजनिक आरोप लगाया था। भारत ने इन आरोपों को सिरे से खारिज करते हुए उन्हें निराधार बताया।

इसके बावजूद हाल के महीनों में दोनों देशों ने रिश्तों को सामान्य बनाने के संकेत दिए हैं। हालिया दौरों और बैठकों के दौरान भारत और कनाडा ने अंतरराष्ट्रीय अपराध, सुरक्षा और खुफिया सहयोग के क्षेत्र में आपसी तालमेल बढ़ाने की प्रतिबद्धता जताई है। कनाडा का दावा है कि वह सिख कार्यकर्ताओं या खालिस्तान समर्थकों को निशाना बनाए जाने से जुड़े कथित अंतरराष्ट्रीय दमन की जाँच कर रहा है। चर्चित निज्जर हत्या मामले में चार भारतीय नागरिकों के खिलाफ अभियोजन की प्रक्रिया चल रही है।

इसी संदर्भ में दोनों देशों के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकारों के बीच संवाद तेज़ हुआ है। कनाडा की राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार नथाली जी. ड्रुआँ ने पिछले वर्ष सितंबर में भारत आकर अपने भारतीय समकक्ष अजीत डोभाल से मुलाकात की थी। अब अजीत डोभाल के कनाडा दौरे की संभावना है, जहाँ वे कनाडा में सक्रिय संगठित अपराध और भारतीय गिरोहों से जुड़ी सूचनाओं के आदान-प्रदान पर बातचीत को आगे बढ़ा सकते हैं।

कनाडा में भारत के नए उच्चायुक्त दिनेश पटनायक भी संबंध सुधारने की कोशिशों में सक्रिय दिखाई दे रहे हैं। उन्होंने सीबीसी और द *ग्लोब एंड मेल* जैसे प्रमुख मीडिया मंचों पर भारत का पक्ष रखते हुए कई साक्षात्कार दिए हैं और विभिन्न प्रांतों के प्रीमियरों से मुलाकात कर उन्हें भारत में निवेश और व्यापार अवसरों के लिए आमंत्रित किया है।

तेजी से बदलते वैश्विक भू-राजनीतिक परिदृश्य में भारत और कनाडा दोनों ही अपने आर्थिक विकल्पों का विस्तार करना चाहते हैं। पटनायक ने एक साक्षात्कार में कहा कि भारत लंबे समय तक कनाडा को अमेरिका का 'छोटा भाई' मानता रहा है, लेकिन अब मार्क कार्नी कनाडा के लिए अधिक स्वतंत्र वैश्विक भूमिका गढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। दावोस में विश्व आर्थिक मंच के दौरान दिया गया उनका भाषण इसी दिशा का संकेत माना गया।

व्यापक व्यापार समझौते को लेकर पटनायक का मानना है कि भारत और कनाडा के बीच एक ठोस समझौता अगले एक वर्ष में संभव है, हालांकि परिस्थितियाँ अनुकूल रहीं तो यह अवधि कम भी हो सकती है।

इधर, कनाडा की विदेश मंत्री अनीता आनंद की पहल पर मंत्रिस्तरीय दौरों की गति भी तेज़ हुई है। कई संघीय मंत्री और ब्रिटिश कोलंबिया के प्रीमियर डेविड एबी भारत का दौरा कर चुके हैं। इंडो-कनाडाई चैंबर ऑफ कॉमर्स का प्रतिनिधिमंडल मार्च में भारत आने वाला है, जो इस बात का संकेत है कि दोनों देश आर्थिक संबंधों को नई दिशा देने के इच्छुक हैं।

आने वाले महीनों में प्रस्तावित उच्च-स्तरीय यात्राएँ यह तय करेंगी कि क्या भारत और कनाडा वास्तव में अतीत के तनाव से आगे बढ़कर एक व्यापक और स्थायी साझेदारी की ओर कदम बढ़ा पाते हैं या नहीं।

वरिष्ठ पत्रकार प्रभजोत सिंह का लेख कूद पत्रकारिता जगत में बहुत बड़ा नाम है। अब वह टोरंटो कनाडा में रहते हैं।

पूर्वाग्रह-जनित असत्य, भ्रामक प्रचार और इतिहास-विरूपण के विरुद्ध मुहिम

गैर-जिम्मेदाराना बयानबाज़ी, निराधार आरोप, चरित्र-हनन और ऐतिहासिक तथ्यों की तोड़-मरोड़ दुर्भाग्यवश हमारे सार्वजनिक विमर्श की एक सामान्य विशेषता बनती जा रही है। एक ओर ऐसा विमर्श जनमानस को झूठ और पूर्वाग्रह से प्रदूषित करता है, तो दूसरी ओर अर्थव्यवस्था, राजनीति और शासन जैसे अहम मुद्दों पर होने वाले गंभीर और संयत संवाद को भारी क्षति पहुँचाता है। दुर्भाग्य से ऐसे विषयों पर चर्चा उच्चतम स्तर तक पहुँच जाती है और उन दिग्गजों का बहुमूल्य समय ले लेती है, जिसे राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में लगना चाहिए।

इसलिए समय की माँग यह है कि मीडिया से जुड़े लोग सामाजिक और पारंपरिक मीडिया के माध्यम से स्वार्थी तत्वों द्वारा फैलाए जा रहे झूठ और विकृत सूचनाओं को प्रभावी ढंग से चुनौती देने के लिए कुछ सकारात्मक कदम उठाएँ। इसी उद्देश्य से 'मीडिया मैप' ने एक विशेष कॉलम शुरू करने का निर्णय लिया है, जिसमें उन मुद्दों की सही और तथ्यपरक तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा, जिनके बारे में झूठ फैलाया जा रहा है।

यह एक सहभागी कॉलम होगा, जिसमें विभिन्न स्रोतों से सामग्री एकत्र की जाएगी। आप किसी भी विषय पर तथ्यों और आँकड़ों के साथ लेख भेजने के लिए आमंत्रित हैं I हम न तो विवादों में उलझेंगे, और न ही प्रतिआक्रमण करेंगे I हम तथ्यों परख लिखेंगे करेंगे, जिससे झूठ फैलाने वालों को यह अहसास हो कि सत्य के सामने असत्य टिक नहीं सकता।

हमें आशा है कि हमारी यह पहल सार्वजनिक बहस में झूठ की बाढ़ को रोकने वाला वातावरण बनाने में सहायक सिद्ध होगी। पहला लेख संलग्न है। — संपादक)

नेताजी की पत्नी एमिली को कट्टरपंथियों ने अपमानित किया नेहरू ने सम्मान दिया

23 मई 1954 को नेहरू ने एक दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर किए। इसमें लिखा है "डॉ. बी. सी. राय और मैंने आज वियना में सुभाष चंद्र बोस की बच्ची के लिए एक ट्रस्ट डीड पर हस्ताक्षर किए हैं। दस्तावेजों को सुरक्षित रखने के लिए मैंने उनकी मूल प्रति एआईसीसी को दे दी है।"एआईसीसी ने 1964 तक अनीता को 6000 रुपये वार्षिक की मदद की। 1965 में उनकी शादी के बाद यह आर्थिक सहयोग बंद कर दिया गया। यह मत समझिए कि तब 500 रुपये महीने कोई छोटी रकम थी। बड़े-बड़े अफ़सरों को भी इतना वेतन नहीं मिलता था।नेताजी सुभाषचंद्र बोस इलाज के लिए 1934 में आस्ट्रिया की राजधानी विएना में थे जहाँ वे खाली वक्त का इस्तेमाल अपनी किताब 'द इंडियन स्ट्रगल' लिखने में कर रहे थे। मदद के लिए उन्हें एक टाइपिस्ट की जरूरत थी। 23 साल की #एमिली_शेंकल का चुनाव इसी काम के लिए हुआ था। लेकिन स्वतंत्रता संग्राम के इस 37 वर्षीय नायक के सीने में एक दिल भी था, जो अपने से 14 साल छोटी एमिली के प्यार भरे स्पर्श से धड़क उठा। 'स्वदेश' और 'स्वदेशी' में पगे नेताजी की नजर में 'विदेशी' से प्यार या शादी कोई गुनाह नहीं था। 26 दिसंबर 1937 को एमिली के 27वें जन्मदिन पर ऑस्ट्रिया के बादगास्तीन में दोनों ने शादी कर ली। लेकिन उन्हें साथ रहने का अवसर कम ही मिला। वे जल्दी ही भारत लौट आए जहाँ कांग्रेस के अध्यक्ष की कुर्सी उनका इंतजार कर रही थी।

स्वतंत्रता आंदोलन की व्यस्तताओं के बीच नेताजी का विदेश जाना कम ही हो पाता था, फिर भी एमिली को लिखी चिट्ठियाँ उनके गहन प्यार की गवाही देती हैं। 29 नवंबर 1942 को उनकी #बेटी_अनीता का जन्म हुआ। वे अपनी

संतान को देखने गए और वहीं से अपने बड़े भाई शरतचंद्र बोस को ख़त लिखकर इसकी जानकारी दी। एमिली ने सिंगल मदर के रूप में काफी कठिनाइयों के बीच अकेली बेटी को पाला।

सुभाषचंद्र बोष की मृत्यु के उपरांत जब #हिंदूवादी_धड़े_ने बोस की पत्नी को विदेशी कहकर अपमानित किया और सुभाष की पत्नी मानने से इंकार किया तब पण्डित नेहरू जी सामने आए और कहा कि हम सुभाषचंद्र बोस की पत्नी को अपमानित नही होने देंगे और उनके तथा उनकी बेटी के खर्चे के लिए हर महीने 500₹ की राशि ऑस्ट्रिया तब तक भिजवाते रहे जब तक सुभाष बाबू की बेटी का विवाह नही हो गया।

जवाहर लाल नेहरू, जिन्हें सुभाष का विरोधी बताने का पूरा अभियान चलाया गया है,जबकि दोनों ही कॉंग्रेस के समाजवादी खेमे के नेता थे। कोई निजी मतभेद नहीं था। सुभाषचंद्र बोस की 'सैन्यवाद प्रवृत्ति' को गाँधी और उनके अनुयायी उचित नहीं मानते थे। लेकिन सुभाष हमेशा वैचारिक रूप से नेहरू को अपने करीब पाते थे। नेहरू ने सुभाष के दुबारा कांग्रेस अध्यक्ष चुने जाने के बाद कार्यसमिति से इस्तीफ़ा भी नहीं दिया था, जैसा कि पटेल समेत 12 गाँधी अनुयायियों ने किया था पर वे गाँधी की दृष्टि को ज़्यादा महत्वपूर्ण मानते थे। यह नेहरू के प्रति सम्मान ही था कि जब सुभाष बोस ने आज़ाद हिंद फ़ौज बनाई तो एक ब्रिगेड का नाम नेहरू के नाम पर रखा। गाँधी जी को 'राष्ट्रपिता' का संबोधन भी नेता जी ने ही दिया था जो बताता है कि वैचारिक विरोध के बावजूद वे गाँधी जी की महानता के किस कदर कायल थे।

धर्मनिरपेक्ष भारत

ब्रिगेडियर उस्मान: देशभक्ति, बलिदान और विरासत का जटिल सच

डॉ सतीश मिश्रा

बलूच रेजिमेंट के ब्रिगेडियर मोहम्मद उस्मान भारतीय सेना के उन वरिष्ठ मुस्लिम अधिकारियों में थे, जिनके बारे में यह लगभग तय माना जा रहा था कि वे देश के बंटवारे के बाद पाकिस्तान का रुख करेंगे। लेकिन उस्मान ने इसके उलट भारत को चुना—अपनी मातृभूमि को, उस धरती को जिसके लिए वे अंत तक लड़े और शहीद हुए।

1947–48 के युद्ध के दौरान जब नौशेरा में युद्ध से पीड़ित नागरिकों ने शरण ली, तब उनके भोजन की व्यवस्था के लिए ब्रिगेडियर उस्मान ने एक असाधारण निर्णय लिया। उन्होंने भारतीय सैनिकों को मंगलवार को उपवास रखने का आदेश दिया, ताकि बचा हुआ राशन शरणार्थियों को दिया जा सके। निजी जीवन में वे सच्चे अर्थों में अनुशासित थे—शराब नहीं पीते थे और सेना में रहते हुए शाकाहारी भी बन गए थे।

उनकी सैन्य दृढ़ता और नैतिक स्पष्टता का एक और उदाहरण तब सामने आया, जब कबाइलियों ने एक मस्जिद की आड़ लेकर भारतीय सेना पर हमले किए। धार्मिक संवेदनशीलता के कारण सेना असमंजस में थी, लेकिन उस्मान ने स्पष्ट आदेश दिया कि यदि कोई पवित्र स्थल युद्ध और हिंसा का माध्यम बनता है, तो वह पवित्र नहीं रह जाता। उन्होंने मस्जिद को ध्वस्त करने का आदेश दिया—धर्म और कर्तव्य के बीच कोई भ्रम नहीं रखा।

ब्रिगेडियर उस्मान पहले फील्ड मार्शल सैम मानेकशॉ और पाकिस्तान के पूर्व आर्मी चीफ मोहम्मद मूसा के बैचमेट थे। कहा जाता है कि यदि वे नौशेरा की लड़ाई में शहीद न हुए होते, तो वे संभवतः भारत के पहले मुस्लिम सेना प्रमुख बनते। मात्र 36 वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी वीरता और देशभक्ति से ऐसा स्थान बना लिया, जो विरले ही किसी को नसीब होता है।

बंटवारे के बाद पाकिस्तान ने उन्हें अपने साथ लाने के लिए हर संभव प्रयास किया—तुरंत पदोन्नति और ऊँचे ओहदे का लालच भी दिया गया। लेकिन उस्मान अपनी मातृभूमि के प्रति अडिग रहे। जब पाकिस्तानी सेना की सरपरस्ती में कबाइलियों ने जम्मू-कश्मीर पर हमला किया, तब ब्रिगेडियर उस्मान 50 पैरा ब्रिगेड की कमान संभालते हुए नौशेरा में तैनात थे। 4 जनवरी 1948 को और उसके बाद कई बार कबाइलियों ने इस रणनीतिक पोस्ट पर कब्ज़े की कोशिश की, लेकिन हर बार भारतीय सेना ने उन्हें नाकाम किया।

सेना के भीतर फैले अविश्वास को दूर करने के लिए ब्रिगेडियर उस्मान ने सैनिकों के बीच 'जय हिंद' के नारे को लोकप्रिय बनाया। पश्चिमी कमान के लेफ्टिनेंट जनरल करियप्पा के आग्रह पर उन्होंने 'ऑपरेशन किपर' के तहत कोट पर कब्ज़ा किया और फिर नौशेरा की रक्षा की। जीत का श्रेय मिलने पर उन्होंने स्पष्ट कहा कि असली सम्मान उन सैनिकों का है, जिन्होंने रणभूमि में लड़ाई लड़ी।

झंगड़ पर पुनः कब्ज़ा करने तक ज़मीन पर सोने की कसम खाने वाले ब्रिगेडियर उस्मान ने 18 मार्च 1948 को अपना वचन पूरा किया। लेकिन 3 जुलाई 1948 को पाकिस्तानी गोलाबारी के दौरान वे शहीद हो गए।

उनकी शहादत पर पूरा देश शोकाकुल हुआ। दिल्ली में उनके जनाज़े में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू स्वयं शामिल हुए। जामिया मिलिया इस्लामिया में उन्हें सुपुर्द-ए-खाक किया गया और मरणोपरांत महावीर चक्र से सम्मानित किया गया। आज भी वे इस सम्मान को पाने वाले सबसे वरिष्ठ अधिकारी माने जाते हैं—एक ऐसे योद्धा, जिसने मजहब नहीं, मातृभूमि को अपनी पहचान बनाया।

सोमनाथ मंदिर का सत्य और मिथ्या भ्रम

प्रो राम पुनियानी

राम मंदिर आंदोलन—जिसका चरम बिंदु बाबरी मस्जिद का ध्वंस था—ने भाजपा और उसकी वैचारिक संरक्षक संस्था आरएसएस को भारी चुनावी लाभ पहुँचाया। इसके बाद काशी और मथुरा को राजनीतिक एजेंडे में शामिल किया गया। अब इसी क्रम में 'सोमनाथ स्वाभिमान पर्व' के रूप में एक नया मोर्चा खोला गया है। धार्मिक वेशभूषा में दिए गए भाषण में प्रधानमंत्री ने दो संदेश दिए—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष संदेश यह था कि सोमनाथ मंदिर भारत की गौरवशाली पहचान का प्रतीक रहा है, जिसे मुस्लिम शासकों ने बार-बार नष्ट किया, विशेष रूप से महमूद ग़ज़नवी द्वारा। परोक्ष संदेश कांग्रेस, खासकर जवाहरलाल नेहरू के विरुद्ध था—यह आरोप लगाते हुए कि उन्होंने मंदिर के पुनर्निर्माण का विरोध किया।

यह प्रश्न मूलभूत है कि क्या कोई पूजा स्थल किसी राष्ट्र की पहचान हो सकता है। महात्मा गांधी के अनुसार, धर्म का सार उसकी नैतिकता में निहित है, न कि प्रतीकों में। जहाँ तक महमूद ग़ज़नवी का सवाल है, ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं कि उसने सोमनाथ पर आक्रमण किया था, लेकिन इसके कारणों को केवल धार्मिक नहीं कहा जा सकता। फ़ारसी इतिहासकार अल-उत्बी और अल-बेरूनी ने सोमनाथ को एक अत्यंत समृद्ध मंदिर बताया है। इतिहासकार रोमिला थापर के अनुसार, यह मंदिर लगभग 20,000 स्वर्ण दीनारों की संपत्ति से युक्त था। इसे 17 बार लूटे जाने का दावा ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट नहीं होता—यह एक प्रचलित मिथक है।

तारीख़-ए-बैयाक़ी जैसे स्रोत बताते हैं कि महमूद की सेना में कई हिंदू सेनापति भी शामिल थे। लौटते समय उसने सोमनाथ क्षेत्र का प्रशासन एक स्थानीय हिंदू राजा को सौंपा, जिसने संस्कृत लेख वाले सिक्के जारी किए। यह तथ्य इस धारणा को चुनौती देता है कि मध्यकालीन आक्रमणों को केवल धार्मिक द्वेष के रूप में समझा जाए।

> *सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण और उद्घाटन से जुड़े तथ्यों को सामने रखते हुए यह लेख उस झूठे प्रचार का खंडन करता है, जिसमें नेहरू और कांग्रेस को मंदिर-विरोधी दिखाया जाता है।*

इतिहासकार रिचर्ड ईटन बताते हैं कि प्राचीन और मध्यकालीन भारत में मंदिरों का ध्वंस अक्सर राजनीतिक वर्चस्व का प्रतीक था, न कि धार्मिक उन्माद का। हिंदू राजाओं के बीच संघर्षों में भी विजेता पराजित राजा के कुलदेवता की मूर्ति को हटाकर अपनी मूर्ति स्थापित करता था। इसी प्रकार, इतिहास में मस्जिदों और अन्य धार्मिक स्थलों को भी नष्ट किए जाने के उदाहरण मिलते हैं।

औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत सांप्रदायिक इतिहास लेखन को बढ़ावा दिया। जेम्स मिल से लेकर इलियट और डॉसन तक, शासकों को धर्म के आधार पर वर्गीकृत किया गया, जिससे इतिहास एकतरफ़ा और विभाजनकारी बन गया।

सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण को लेकर नेहरू पर लगाया गया आरोप पूरी तरह भ्रामक है। यह मुद्दा गांधी के जीवनकाल में उठा था। गांधी, नेहरू और सरदार पटेल—तीनों इस बात पर एकमत थे कि मंदिर निर्माण में सरकारी धन का उपयोग नहीं होना चाहिए। 1947 में गांधी ने स्पष्ट किया था कि जूनागढ़ सरकार कोई सरकारी सहायता नहीं देगी। सरदार पटेल के नेतृत्व में बने ट्रस्ट—जिसमें के.एम. मुंशी और गाडगिल शामिल थे—ने सार्वजनिक चंदे से मंदिर का निर्माण कराया।

मंदिर के उद्घाटन को लेकर भी भ्रम फैलाया गया। राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने निजी हैसियत से उद्घाटन करने की इच्छा जताई थी और नेहरू ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। इस संबंध में उपलब्ध पत्राचार ऐतिहासिक अभिलेखों में दर्ज है।

इतिहास को बदले की राजनीति का औज़ार बनाना खतरनाक है। यदि बदले की भावना को मान्यता दी जाए, तो फिर बौद्ध विहारों के विध्वंस, जैन मंदिरों के टूटने, दलितों और महिलाओं पर हुए अत्याचारों तथा सती जैसी अमानवीय प्रथाओं के लिए भी बदला माँगा जाएगा। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था बदले नहीं, बल्कि न्याय के सिद्धांत पर आधारित होती है।

इतिहास का उद्देश्य समाज को बाँटना नहीं, बल्कि अतीत की गलतियों से सीख लेकर एक समान, न्यायपूर्ण और गरिमामय भविष्य की ओर बढ़ना होना चाहिए—जहाँ सभी नागरिकों को बराबर अधिकार और सम्मान मिले।

लेखक डॉ. राम पुनियानी सम्प्रदायिकता विरोधी अभियान के अग्रिम हस्ताक्षर हैं।

इकलौता बच्चा कितना अकेला

यह लेखक स्वर्गीय डॉ. रामा सहारिया की प्रकाशनाधीन अंग्रेजी पुस्तक Understanding Child Psychology से लिया गया है। राजकीय स्नानतक कॉलेज की प्रधानाचार्य डॉक्टर रामा सहारिया (1945 – 2024) का विषय मनोवैज्ञानिक था जिस पर उन्होंने शोध कार्य किया था और इस विषय पर मीडिया मे उनके तमाम लेख प्रकाशित हुए। वह मीडिया मैप के प्रशासन से भी संबंधित रही। यह लेख उनकी पुण्यतिथि 8 फरवरी को श्रद्धांजलि के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

दस वर्षीय रवि ने जब से होश संभाला है तब से अपने को अकेला ही पाया है। शायद उसे कभी इस बात का आभास भी ना हुआ हो कि भाई-बहन का क्या अर्थ है या घर में भाई-बहन के रहने से क्या अंतर पड़ता है। पूछे जाने पर रवि ने कुछ ऐसा ही उत्तर दिया कि उसे कभी भाई-बहन की जरूरत ही नहीं महसूस होती। "मुझे सुबह आया तैयार कर स्कूल भेज देती है आता हूँ तो वही खाना खिला देती है। मैं अकेला ही होमवर्क करता हूँ", रवि कहता है। स्पष्ट है जब माता-पिता दोनों अपने व्यवसायों में व्यस्त है तो आया ही सब करेगी। "जब मम्मी पापा आते है तो मै दोनों के साथ खेलता हूँ और बाते करता हूं। रवि ने आगे बताया।

कामकाजी माता-पिता और एकल संतान का मॉडल सुविधा-केंद्रित है, लेकिन बच्चे की भावनात्मक ज़रूरतों को अनदेखा करता है। रवि और दिशा जैसे उदाहरण बताते हैं कि भौतिक सुविधाएँ भाई-बहन की कमी पूरी नहीं कर सकतीं।

इसके विपरीत दिशा की बहुत तमन्ना है कि घर में छोटा भाई या बहन अवश्य होये। "मैं किससे बाते करूं, मेरे साथ तो कोई खेलने वाला भी नहीं है।" यह उसकी शिकायत है। जबकि उसके अभिभावक अपनी स्थिति से बहुत संतुष्ट है। उन्हे दूसरे बच्चे की बिल्कुल चाह नही है। ना ही उन्हें बेटे का अभाव खटकता है। "हमारे लिये दिशा ही सब कुछ है हम दोनों की इच्छा है कि उसे ही अच्छी शिक्षा और अच्छे संस्कार दे और इसकी अपनिगिंग में कोई कमी ना रहे। इतनी महंगाई में हम दो बच्चे की कल्पना भी नहीं कर सकते। फिर पब्लिक स्कूल की पढ़ाई- प्रतिस्पर्धाः मै पूरा ध्यान और समय दिशा को ही देना चाहती हूँ।"

इस विषय में दिल्ली विश्वविद्यालय के एक महाविद्यालय की वरिष्ठ प्रवक्ता के विचार बिल्कुल भिन्न है। उनके विचार में परिवार में कम से कम 2 बच्चे अवश्य होने चाहिये। "मै एकल बालक परिवार की परिकल्पना से पूर्णतः असहमत हूँ। बच्चे को अपनी बात कहने के लिये, हँसी मजाक करने के लिये हम उम्र की जरूरत होती है। हर समय बच्चा पड़ोस के मित्रों से नहीं मिल सकता। घर में ही उसे कोई ऐसा चाहिये जिस पर वह भरोसा रख सके, अपने अंर्तमन की बात कह सके। कई बाते ऐसी होती है जो माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बाँटी नही जा सकती। अपने भाई बहनों के साथ घर पर ही एक "इनर सर्किल" सा बन जाता है जो बच्चे के अहम के लिये सुरक्षात्मक कवच का काम करता है।" वे और आगे स्पष्ट करते हुये कहती है, "एक से अधिक बच्चों का होना माता-पिता के लिये भी श्रेयस्कर है। वैसे भी स्वस्थ, संतुलित और सामान्य पारिवारिक इकाई के लिये परिवार में कम से कम 2 बच्चों का होना ठीक रहता है।"

विशेषज्ञों के अनुसार भाई-बहन बच्चे के लिए "इनर सर्किल" होते हैं—जहाँ भरोसा, साझा अनुभव और भावनात्मक सुरक्षा विकसित होती है। एकल बालक परिवार बच्चे के सामाजिक और मानसिक विकास को सीमित कर सकता है।

सवाल उठता है कि इकलौते बच्चे को भी अपनी कुछ समस्याये हो सकती है। यह ठीक है कि कुछ जनसंख्या नियंत्रण की दृष्टि से और कुछ कामकाजी लोगों ने

अपनी सुविधा की दृष्टि से परिवार को एक बच्चे तक ही सीमित कर दिया है। पर क्या किसी ने इस मुद्दे पर बच्चे के नजरिये से सोचा है? सवाल अभिभावको की अतिव्यस्ता, आधुनिक जीवन के दबाव और परिवार के आर्थिक स्तर से इतना जुड़ा नही है जितना कि स्वयं उस अकेले बच्चे से जिसके इर्द-गिर्द परिवार का ताना बाना बुना जाता है, जो परिवार का केन्द्र बिन्दु है तथा जिसके उज्जवल भविष्य के लिये तमाम प्रयास, तमाम योजनाये बनाई जाती है।

पता नहीं हम क्यूँ भूल जाते है कि बच्चा सजने सजाने की वस्तु ना होकर जीता जागता विकसित होता हुआ प्राणी है जिसकी अपनी जरूरते हैं, माँग है और अपेक्षाये है। बच्चे का सम्पूर्ण विकास विभिन्न परिस्थितियों और पारिवारिक रिश्तों के मध्य अर्जित अनुभवो से ही होता है। क्या अभिभावको द्वारा उसकी समस्त माँगे पूरी करना, कीमती से कीमती वस्त्र या खिलौने दिलवाने से ही उनके कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है? एक नामी गरामी टी.वी. चैमल के प्रोग्राम एक्जीक्यूटिव की पत्नी सर्गव कहती है, "मैं अपने बेटे के लिये महँगी से मँहगी जीन्स और आईसक्रीम लाती हूँ।" पर क्या ये सब चीजे उनके इकलौते बेटे की मनोवैज्ञानिक जरूरतों की भी पूर्ति कर पायेगी!! क्या उसमे ऐसी सुरक्षात्मक भावना भर पायेगी जो उसे वर्तमान के घरातल से जोड़ सके !!

इकलौता बच्चा अकेलेपन का अनुभव करता है भले ही वह स्वयं को अन्य बातों में व्यस्त रखने की कोशिश करता हो। बच्चा अकेले रहने का आदी हो जाता है पर वह अपसी मेल जोल, नोंक झोक के उन तमाम अनुभवों से वंचित रह जाता है जो उसे भाई-बहन द्वारा ही प्राप्त होते है। ऐसे बच्चे किसी भी सामाजिक स्थिति में अपने को सहज नहीं रख पाते। उनका हर प्रयास स्वयं को आपसी मेल जोल, की स्थिति से दूर रखने का रहता है। धीरे-धीरे वह इतना संकोची और शर्मीला हो जाता है कि अपने को अपने ही विचारों के घरौंदे से बाहर नहीं निकाल पाता।

देखा गया है कि ऐसे बच्चे बहुत आत्म केन्द्रित भी हो जाते है। उनके विचार में सारी दुनिया उन्ही के लिये है। स्वार्थपरता के कारण उनके सोचने समझने का दायरा भी संकुचित हो जाता है। उन्होंने बाँटना सीखा ही नहीं अतः देने के आन्नद से भी वंचित रहते है।

जहाँ तक अन्य बच्चों के साथ उनके समायोजन का प्रश्न है वह भी उस स्तर का नही होता जितनी कि उनसे प्रत्याशा की जाती है। ऐसे बच्चे के सीखने की गति भी प्रायः धीमी होती है। क्योंकि घर में उसके लिये कोई प्रतिस्पर्धा नहीं रहती। उसके सीखने की लगन भी कम होती है। माता-पिता के अत्याधि एक लाड़ प्यार से वह जिद्दी, मनमौजी संवेदनहीन और बहुत अधिक 'डिमांडिंग' हो जाता है जो कि निश्चित रूप से अच्छा लक्षण नही है।

इकलौते बच्चे में अकेलापन, संकोच और आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति पनपने का खतरा अधिक होता है। अत्यधिक लाड़-प्यार उसे जिद्दी और कम प्रतिस्पर्धी बना सकता है, जिससे सीखने और सामंजस्य की क्षमता प्रभावित होती है।

जन संख्या विस्फोट को रोकने के लिये चीन में 'प्रति परिवार एक बच्चा' नीति को लागू किया गया था परंतु बाद में देखा गया कि इस स्थिति का बच्चे के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और चारित्रिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ा। सर्वेक्षणों से पता लगा कि अनेक बच्चों में सीखने की गति धीमी रही, अनेक संकोची और शर्मीले बन गये जबकि आत्मविश्वास की कमी अधिकांश में पाई गई लड़कियों में व्यावहारिकता का अभाव रहा। परिणामतः चीन में इस नीति के उपर पुनः विचार किया जा रहा है।

शनैः शनैः हमारे समाज में भी विशेषकर मध्यमवर्ग और उच्च मध्य वर्गीय परिवारों में इस मानसिकता का प्रभाव पड़ रहा है। जबकि ये परिवार हर प्रकार से सक्षम है और एक से अधिक बच्चे का भार उठाने में सक्षम है। अच्छी शिक्षा और समुचित लालन पालन द्वारा दो अच्छे नागरिक तैयार कर समाज में योगदान भी दे सकते है पर वे ऐसा नहीं कर रहे। महिलाये मात्र गृहिणी की भूमिका में रह कर भी नयी जीवन शैली को अपनानेमें अधिक रूचि लेती प्रतीत हो रही है और जहाँ तक सम्भव हो स्वयं को मातृत्त्व के सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर रखने की ही कोशिश में है। अच्छा होगा अगर हर अभिभावक अपनी सोच में बदलाव लाने का प्रयास करें और अपने इकलौते बच्चे के हित में उसे परिवार में कम से कम एक साथी और दे।

ईरान की मौजूदा अशांति का कारण विदेशी हस्तक्षेप

ईरान में हालिया जन-असंतोष को केवल तात्कालिक आर्थिक संकट या आंतरिक राजनीतिक असंतुलन के रूप में देखना अधूरा विश्लेषण होगा। इसकी गहरी जड़ें उन ऐतिहासिक घटनाओं में हैं, जिनमें दशकों से चला आ रहा विदेशी हस्तक्षेप, तख्तापलट और कठोर आर्थिक प्रतिबंध शामिल हैं।

1951 में प्रधानमंत्री मोहम्मद मोसादेघ द्वारा ईरान के तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण ने ब्रिटेन और अमेरिका के रणनीतिक हितों को सीधी चुनौती दी। इसके जवाब में 1953 में सीआईए और एमआई6 के संयुक्त गुप्त ऑपरेशन के जरिए उनकी लोकतांत्रिक सरकार को गिरा दिया गया। इस घटना ने ईरानी समाज में पश्चिमी शक्तियों के प्रति गहरे अविश्वास की नींव रखी, जिसकी छाया आज भी ईरान की राजनीति और विदेश नीति पर दिखाई देती है।

इसके बाद पश्चिम समर्थित शाह का शासन स्थापित हुआ, लेकिन उसे व्यापक जनसमर्थन नहीं मिला। 1979 की इस्लामी क्रांति में जनता ने शाह को अपदस्थ कर दिया और अमेरिका के साथ ईरान के संबंध शत्रुता में बदल गए। ईरानी दृष्टिकोण से 1980 में इराक द्वारा किया गया हमला भी पश्चिमी रणनीति का हिस्सा था, जिसे खाड़ी देशों का समर्थन मिला। आठ वर्षों तक चले इस युद्ध ने ईरान को मानवीय और आर्थिक रूप से गहरी क्षति पहुँचाई।

ईरान का परमाणु कार्यक्रम, जिसकी शुरुआत कभी अमेरिकी सहयोग से हुई थी, समय के साथ अंतरराष्ट्रीय संदेह का केंद्र बन गया। 2015 का परमाणु समझौता (जेसीपीओए) तनाव कम करने की दिशा में एक अहम कदम था, लेकिन 2018 में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के एकतरफा फैसले से इसके निरस्त होने और फिर से कड़े प्रतिबंध लगने से ईरानी अर्थव्यवस्था बुरी तरह चरमरा गई। मुद्रा अवमूल्यन, बढ़ती महंगाई और बेरोज़गारी ने आम लोगों की जिंदगी को कठिन बना दिया, जिससे असंतोष सड़कों पर फूट पड़ा। तेहरान का आरोप है कि इन विरोध प्रदर्शनों को भड़काने में विदेशी खुफिया एजेंसियों, विशेषकर इज़रायल की मोसाद, की भी भूमिका है। लेखक का निष्कर्ष है कि प्रतिबंध और दबाव कभी स्थिरता नहीं लाते, बल्कि अविश्वास और अस्थिरता को ही बढ़ाते हैं। यदि वास्तव में ईरानी जनता के हित और क्षेत्रीय शांति की चिंता है, तो समाधान टकराव नहीं, संवाद और प्रतिबंधों में राहत से ही निकलेगा।

चीन की बड़ी उपलब्धि : ऊर्जा संरक्षण का नया युग

प्रभात रंजन मिश्रा

अत्यधिक तापमान पर काम करने वाली थर्मल बैटरियाँ, जहाँ सामान्य बैटरियाँ विफल हो जाती हैं, लंबे समय से कैथोड की अस्थिरता की समस्या से जूझ रही थीं। अब चीनी वैज्ञानिकों ने एक नई कैथोड संरचना विकसित कर इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है, जिससे उच्च ताप पर ऊर्जा भंडारण की क्षमता और आयु दोनों में बड़ा सुधार संभव हुआ है।

थर्मल बैटरियाँ 350 से 550 डिग्री सेल्सियस पर कार्य करती हैं और इनमें पिघले हुए लवण (मोल्टन सॉल्ट) इलेक्ट्रोलाइट के रूप में उपयोग होते हैं। ये केवल गर्म होने पर ही आयन चालक बनते हैं। रक्षा, अंतरिक्ष, आपातकालीन बिजली आपूर्ति और गहरे तेल-गैस कुओं जैसी परिस्थितियों में, जहाँ अत्यधिक ताप और विश्वसनीयता दोनों आवश्यक हैं, इन बैटरियों का विशेष महत्व है।

ट्रांज़िशन मेटल फ्लोराइड उच्च वोल्टेज और तापीय स्थिरता के कारण आदर्श कैथोड माने जाते हैं, लेकिन इनमें "शटल प्रभाव" होता है। उच्च ताप पर ये घुलकर इलेक्ट्रोलाइट में फैल जाते हैं, जिससे सक्रिय पदार्थ की हानि, साइड रिएक्शन और बैटरी की उम्र में कमी आती है।

चीनी विज्ञान अकादमी के प्रोफेसर वांग सोंग और झू योंगपिंग के नेतृत्व में टीम ने इस समस्या का समाधान इंटरफेस इंजीनियरिंग से किया है। एडवांस्ड साइंस में प्रकाशित उनके अध्ययन में कोबाल्ट फ्लोराइड कणों को कोवैलेंट ऑर्गेनिक फ्रेमवर्क (COF) से बने कार्बन शेल से ढकने की तकनीक अपनाई गई। इन शेलों में 0.54 नैनोमीटर चौड़ी सूक्ष्म नलिकाएँ होती हैं, जो उपयोगी आयनों को जाने देती हैं लेकिन हानिकारक घुलन और पलायन को रोकती हैं।

इस प्रकार कैथोड पदार्थ को "कैद" कर लिया जाता है, जिससे क्षमता और संरचनात्मक मजबूती बनी रहती है। यह तकनीक न केवल थर्मल बैटरियों बल्कि अन्य उच्च-ऊर्जा भंडारण प्रणालियों के लिए भी नए रास्ते खोलती है।

खतरनाक अमीबा के फैलने से स्वास्थ्य संकट का ख़तरा

वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि मिट्टी और पानी में पाए जाने वाले "मुक्त रहने वाले अमीबा" (Free-living Amoebae) भविष्य में एक गंभीर वैश्विक स्वास्थ्य संकट का रूप ले सकते हैं। बायोकॉन्टामिनेंट पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, जलवायु परिवर्तन, बिगड़ती जल आपूर्ति प्रणालियाँ और अपर्याप्त निगरानी के कारण ये सूक्ष्म जीव तेजी से नए क्षेत्रों में फैल रहे हैं। अधिकांश अमीबा हानिरहित होते हैं, लेकिन कुछ प्रजातियाँ अत्यंत घातक संक्रमण पैदा कर सकती हैं।

इनमें सबसे कुख्यात नेगलेरिया फाउलेरी है, जिसे "मस्तिष्क खाने वाला अमीबा" कहा जाता है। यह दूषित पानी के नाक के माध्यम से शरीर में प्रवेश कर मस्तिष्क में गंभीर और लगभग हमेशा घातक संक्रमण पैदा कर सकता है। तैराकी या गर्म पानी के स्रोतों में स्नान के दौरान इसका जोखिम अधिक रहता है।

विशेषज्ञों के अनुसार इन अमीबा को नियंत्रित करना इसलिए कठिन है क्योंकि ये अत्यधिक गर्मी, क्लोरीन जैसे शक्तिशाली कीटाणुनाशकों और आधुनिक जल वितरण प्रणालियों में भी जीवित रह सकते हैं। सन यात सेन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक लोंगफेई शू बताते हैं कि ये अमीबा बैक्टीरिया और वायरस के लिए "ट्रोजन हॉर्स" की तरह काम करते हैं। रोगजनक इनके भीतर छिपकर जल शोधन प्रक्रियाओं से बच जाते हैं और बाद में फैलते हैं, जिससे एंटीबायोटिक प्रतिरोध का खतरा भी बढ़ सकता है।

वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण गर्मी पसंद करने वाले अमीबा उन इलाकों में भी फैल रहे हैं जहाँ पहले वे नहीं पाए जाते थे। हाल के वर्षों में मनोरंजक जल स्रोतों से जुड़े कई मामलों ने सार्वजनिक स्वास्थ्य एजेंसियों की चिंता बढ़ा दी है।

शोधकर्ता एक समन्वित "वन हेल्थ" रणनीति अपनाने की सलाह दे रहे हैं, जिसमें सार्वजनिक स्वास्थ्य, पर्यावरण विज्ञान और जल प्रबंधन को एक साथ जोड़ा जाए। बेहतर निगरानी, तेज और सटीक जांच तकनीकें तथा उन्नत जल शोधन प्रणालियाँ विकसित कर ही इस उभरते खतरे से समय रहते निपटा जा सकता है।

डॉलर पर निर्भरता कम करना सबके लिए फ़ायदेमंद

अमेरिका की हालिया आक्रामक विदेश नीति को कई लोग आर्थिक वर्चस्व, विशेषकर तेल और रणनीतिक खनिजों पर नियंत्रण की लालसा से जोड़ते हैं। डोनाल्ड ट्रंप का यह कहना कि वेनेज़ुएला का तेल अमेरिका का है, ग्रीनलैंड को उसके खनिज संसाधनों के लिए अपने अधीन लेना चाहिए, और ईरान को चेतावनी देना कि वह अमेरिकी निर्देशों का पालन करे, इस सोच को दर्शाता है कि आर्थिक संसाधन ही राष्ट्रीय शक्ति का आधार हैं।

कुछ विश्लेषकों के अनुसार यह सब घरेलू असफलताओं से ध्यान भटकाने का प्रयास भी हो सकता है। टैरिफ नीति से न तो अर्थव्यवस्था को अपेक्षित गति मिली और न ही रोजगार में सुधार हुआ। राष्ट्रीय ऋण बढ़कर 38.4 ट्रिलियन डॉलर हो गया है, महंगाई आम लोगों की क्रय शक्ति को कमजोर कर रही है, और 2020 के बाद से रोजगार वृद्धि सबसे निचले स्तर पर है। इन परिस्थितियों में आक्रामक बयानबाज़ी एक राजनीतिक तमाशा प्रतीत होती है।

लेकिन संसाधनों पर नियंत्रण को रणनीतिक सुरक्षा से जोड़ने का तर्क भी कमजोर है। वेनेज़ुएला के तेल क्षेत्र को संभालने के लिए भारी निवेश की आवश्यकता होगी। एक्सॉन के सीईओ तक इसे "निवेश के लायक नहीं" बता चुके हैं। इससे वैश्विक तेल आपूर्ति बढ़ेगी और अमेरिकी शेल उद्योग को नुकसान होगा।

असल चिंता डॉलर के वर्चस्व को लेकर है। पिछले वर्ष चीन ने हांगकांग में 4 अरब डॉलर के बॉन्ड जारी किए, जिनकी मांग अमेरिकी बॉन्ड से भी अधिक रही और ब्याज दरें कम थीं। इसका अर्थ है कि चीन अमेरिका से सस्ती दर पर कर्ज लेने में सफल रहा। ये धन बेल्ट एंड रोड परियोजनाओं में लगेगा और कई देशों में ऋण की अदायगी अब रेनमिन्बी में की जा रही है।

यह प्रवृत्ति डॉलर के उस "विशेषाधिकार" को चुनौती देती है जो उसे 1945 से और 1974 के पेट्रोडॉलर समझौते के बाद से प्राप्त है। एक बहुध्रुवीय मुद्रा व्यवस्था न केवल वैश्विक संतुलन को बेहतर बना सकती है, बल्कि अमेरिकी नागरिकों पर पड़ने वाले आर्थिक दबाव को भी कम कर सकती है।

प्रकृति ने खुद रचा पुनर्जनन का चमत्कार

जहाँ कभी पेड़ कट चुके थे और ज़मीन उजाड़ व धूप से झुलसी हुई थी, वहाँ आज बिना किसी मानवीय रोपण या हस्तक्षेप के फिर से हरियाली लौट रही है। वैज्ञानिक अध्ययनों और उपग्रह चित्रों से स्पष्ट है कि जैसे ही वनों की कटाई और मानवीय दबाव रुका, जंगलों ने स्वाभाविक रूप से खुद को पुनर्जीवित करना शुरू कर दिया। यह प्रक्रिया धीमी जरूर है, लेकिन गहरी और टिकाऊ है।

प्रकृति पहले "अग्रदूत" पौधों को भेजती है—ऐसी प्रजातियाँ जो खराब मिट्टी और तेज धूप में भी पनप सकती हैं। ये छाया बनाती हैं, मिट्टी को ठंडा करती हैं और नमी बनाए रखती हैं। इसके बाद फफूंद, सूक्ष्म जीव और कीड़े सक्रिय होते हैं, जो मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। धीरे-धीरे पक्षी और जानवर बीज फैलाते हैं और ऐसे पेड़ उगने लगते हैं जो परिपक्व जंगल की रीढ़ बनते हैं। इस क्रमिक प्रक्रिया को पारिस्थितिक "उत्तराधिकार" कहा जाता है।

कोस्टा रिका, ब्राज़ील और यूरोप के कई हिस्सों में छोड़े गए चरागाह और खेत कुछ ही दशकों में फिर से घने द्वितीयक जंगलों में बदल गए हैं। ये जंगल न केवल जैव विविधता लौटाते हैं, बल्कि बड़ी मात्रा में कार्बन भी अवशोषित करते हैं, जिससे जलवायु परिवर्तन से लड़ने में मदद मिलती है।

हालाँकि, हर जगह यह संभव नहीं। जहाँ मिट्टी खनन से नष्ट हो चुकी है, बार-बार आग लगती है या आक्रामक घास फैल गई है, वहाँ प्राकृतिक पुनर्जनन रुक जाता है। इसलिए विशेषज्ञ "सहायक प्राकृतिक पुनर्जनन" की बात करते हैं—यानी चराई रोकना, आग पर नियंत्रण, रसायनों का सीमित उपयोग और बीज फैलाने वाले जीवों की रक्षा, ताकि प्रकृति को अपना काम करने का मौका मिले।

सबसे बड़ा सबक सरल है: जब हम विनाश रोक देते हैं, तो प्रकृति स्वयं उपचार शुरू कर देती है। कभी-कभी सबसे प्रभावी कदम होता है—एक तरफ हट जाना और जंगल को समय देना।

विश्व शिक्षा : अमेरिकी प्रभुत्व को चुनौती

वैश्विक विश्वविद्यालय रैंकिंग में हाल के वर्षों में उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं, जिनमें कई चीनी संस्थान तेज़ी से ऊपर उभरकर सामने आए हैं। वैज्ञानिक प्रकाशनों और उनके उद्धरण प्रभाव के आधार पर विश्वविद्यालयों का आकलन करने वाली प्रतिष्ठित लाइडन रैंकिंग के अनुसार, चीन के विश्वविद्यालय शोध की मात्रा और गुणवत्ता—दोनों में निरंतर सुधार कर रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि हार्वर्ड जैसे विश्वविख्यात अमेरिकी संस्थान भी रैंकिंग में नीचे खिसक गए हैं, जबकि जियांगसू और त्सिंगहुआ जैसे विश्वविद्यालय लगातार शीर्ष पायदानों की ओर बढ़ रहे हैं।

विश्लेषकों के अनुसार यह बदलाव आंशिक रूप से ट्रंप प्रशासन के दौरान अपनाई गई उन नीतियों से जुड़ा है, जिनके कारण अमेरिका में शोध अनुदानों में कटौती, यात्रा प्रतिबंध और आव्रजन नियमों में सख़्ती आई। चूँकि अमेरिकी विश्वविद्यालय बड़ी मात्रा में संघीय फंडिंग पर निर्भर रहते हैं, इसलिए इन नीतियों का सीधा असर उनकी अनुसंधान क्षमता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग पर पड़ा। यद्यपि विशेषज्ञ इसे अमेरिकी उच्च शिक्षा के दीर्घकालिक पतन की शुरुआत नहीं मानते, फिर भी उनका कहना है कि इन फैसलों ने प्रतिस्पर्धा में पिछड़ने की गति को तेज़ कर दिया।

इसका एक महत्वपूर्ण संकेत अंतरराष्ट्रीय छात्रों की घटती संख्या भी है। अगस्त 2025 में अमेरिका आने वाले विदेशी छात्रों की संख्या पिछले वर्ष की तुलना में लगभग 19 प्रतिशत कम रही। यदि प्रतिभाशाली शोधकर्ता और विद्यार्थी अन्य देशों का रुख करते हैं, तो इससे अमेरिका की अकादमिक प्रतिष्ठा और प्रभाव और कमज़ोर हो सकता है।

दूसरी ओर, चीन ने अपने विश्वविद्यालयों में अरबों डॉलर का निवेश कर एक मज़बूत शोध पारिस्थितिकी तंत्र विकसित किया है और स्वयं को वैश्विक शिक्षा केंद्र के रूप में स्थापित करने की दिशा में कदम बढ़ाए हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में नए वीज़ा कार्यक्रमों और प्रोत्साहनों के ज़रिये वह अंतरराष्ट्रीय प्रतिभाओं को आकर्षित कर रहा है, जिससे वैश्विक शैक्षणिक संतुलन धीरे-धीरे एशिया की ओर खिसकता दिखाई दे रहा है।

RNI NO. : UPHIN/2016/68336

See Media Map Website

Website link: www.mediamap.co.in

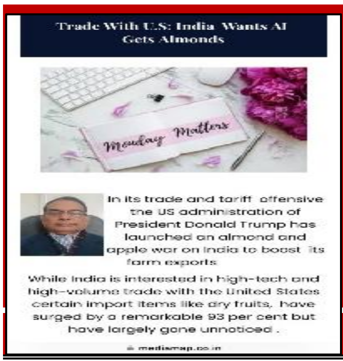

Trade With U.S: India Wants AI Gets Almonds

In its trade and tariff offensive the US administration of President Donald Trump has launched an almond and apple war on India to boost its farm exports

While India is interested in high-tech and high-volume trade with the United States certain import items like dry fruits, have surged by a remarkable 93 per cent but have largely gone unnoticed .

mediamap.co.in

Growing Signs Of Anguish, Suffocation And Helplessness In BJP

Let me begin my outpourings today with a personal note. Like me, a regular column writer is confronted with a dilemma week after week as the time of penning the column approaches. What subject should I pick up this week which would interest my dear readers who take pains to read me week after week. Burden grows when one has to effort to choose words which deserve or qualify for the "Wednesday Wisdom"-the

mediamap.co.in

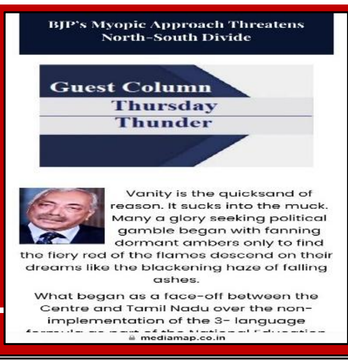

BJP's Myopic Approach Threatens North-South Divide

Vanity is the quicksand of reason. It sucks into the muck. Many a glory seeking political gamble began with fanning dormant ambers only to find the fiery red of the flames descend on their dreams like the blackening haze of falling ashes.

What began as a face-off between the Centre and Tamil Nadu over the non-implementation of the 3- language

mediamap.co.in

Maha Kumbh And Succession War In The BJP

The BJP's top leadership, often referred to as the Gujarat lobby, is in a catch-22 situation after the Maha Kumbh in Prayagraj, which is being claimed as an epic and highly successful event unprecedented in human history. The BJP leadership's dilemma is :

If it it as the effective new electoral placard in place of Hindutav whose appeal is clearly weakening it will lead to projection

mediamap.co.in

View Media Map YouTube

Media Map News

जनसंवाद 7 : खानपान पर रोक क्यों? Ep- 124

3 views • 4 hours ago

जन संवाद 6 : नेहा हो या कुणाल, व्यंग्य से क्यों डरना? Ep- 123

4 views • 4 hours ago

विविधा 15 : जज को भी छह महीनों की सजा : Ep- 122

27 views • 21 hours ago

विविधा- 14 : कंपनी की तानाशाही - आपके प्रोडक्ट को ख़राब कर रहें हैं। Ep- 121

6 views • 23 hours ago

आर्थिक सहयोग की अपील

उदार लोकतंत्र और गैर-सांप्रदायिक विश्वास के दर्शन से जुड़ा, मीडियामैप समाचार नेटवर्क एक गैर-व्यावसायिक संगठन है। हम आप जैसे गंभीर और समझदार पाठकों को संबोधित करना चाहते हैं। वरिष्ठ मीडियाकर्मियों के समूह द्वारा किया गया यह एक स्वैच्छिक प्रयास है, जिसका किसी राजनीतिक, सामाजिक या व्यावसायिक समूह से कोई संबंध नहीं है। मीडिया मैप के प्रकाशन को निरंतर व सुचारु रूप से जारी रखने हेतु आपका सहयोग आवश्यक है।

- **State Bank of India**
- **Account No. 43812481024**
- **IFSC # SBIN0005226**
- **प्रस्तुत QR कोड को स्कैन करें।**

SBI

MEDIA MAP

SCAN & PAY

UPI ID: 9810385757@sbi

Advt.

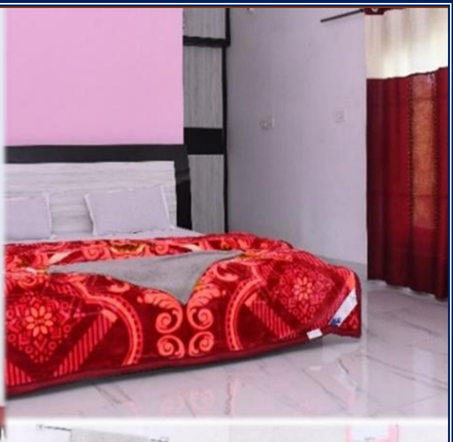

Scholars Destination

PLEASE CONTACT

9045005700 | 9910322682 | www.sdmotel.com | info@sdmotel.com